UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178825

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83
T16R

Acc No. GH857.

Author : टंडन, प्रेमनारायण

Title : रीता की बात

ania University Library

Accession No. GH 857

टंडन, प्रेम नारायण
गीता की बात

should be returned on or before the date last

रीता की बात

रीता की बात

प्रतापनारायण श्रीवास्तव

(सर्वाधिकार लेखक के अधीन)

प्रथम संस्करण, १९५७

मूल्य दो रुपए

प्रकाशक
प्रेम पब्लिशर्स
गोलागंज, लखनऊ

मुद्रक
प्रेम प्रिंटिंग प्रेस
गोलागंज, लखनऊ

'रीता की बात'

श्री प्रतापनारायण टण्डन लिखित लघु उपन्यास है। वह लेखक का पहला उपन्यास भी है। उपन्यास का कथानक सरल-सीधा किन्तु मार्मिक है। उसकी कहानी विश्वसनीय बन सकी है, यह बड़ी बात है। रीता और रमेश के प्रणय-विकास का चित्रण और रीता की डायरी उपन्यास के विशेष सफल अंश हैं। उपन्यास की समस्या मूलतः नैतिक है, और वह सशक्त रूप में सामने आई है। रीता के बाद के जीवन की कथा कुछ और विस्तार और सूक्ष्मता से कही जाती तो संभवतः उपन्यास और भी प्रभावशाली बन जाता।

उपन्यास-क्षेत्र में श्री टण्डन के इस प्रथम प्रयास का मैं अभिनन्दन करता हूँ।

—डा० देवराज

रीता की बात

मैं बहुधा आधी-आधी रात को चौंक पड़ता हूँ । मेरे दिन कुछ अजीब सी, अनिश्चय की स्थिति में बीतते हैं । मैं हर वक्त परेशान रहता हूँ । मेरा पौरुष मुझे धिक्कारता है । मुझे अपने किये पर पश्चाताप होता है । मैं जब अपने पिछले जीवन के बारे में सोचता हूँ, तो मुझे वे सारे चित्र अपने सामने साकार होते दिखाई देते हैं, जो मैंने अपने जीवन में कभी देखे थे । मैं प्रत्येक सम्भव प्रयत्न करता हूँ, अपने हृदय की शांति के लिये, लेकिन वह मुझे नहीं मिलती । शायद यहाँ प्रकृति की गोद में मुझे कुछ संतोष मिले, यह सोचकर मैं चला पहाड़ आया था, लेकिन यहाँ आये आज मुझे पूरा एक महीना हो रहा है और मैं देखता हूँ कि मेरी घबड़ाहट में कोई कमी नहीं है । मैं अपने व्यवहार में बहुत कुछ स्वाभाविकता लाने का प्रयत्न हर समय करता हूँ ताकि मुझे लोग पागल न समझें, लेकिन काफी होशियारी के बाबजूद भी मेरा ख्याल है कि वे मुझे पागल नहीं तो सनकी जरूर समझते हैं ।

आपके मन में स्वभावतः ही यह प्रश्न उठेगा कि आखिर ऐसी कौन सी बात है, जिसके कारण मैं उद्विग्न रहता हूँ । बात यह है कि मेरे पिछले जीवन में एक ऐसी घटना घट चुकी है, जिसके फलस्वरूप ही यह सब हो रहा है । पहले मैंने सोचा था कि मैं अपने अभाग्य की यह कहानी अपने तक ही रखूँगा, लेकिन अब मेरा बिचार बदल गया है । अब मैं अपने मन को हल्का करने के लिये यह जरूरी समझता हूँ कि उसे मैं आपको सुना दूँ । तभी मेरे दिल का बोझ शायद कुछ हल्का हो सकेगा । मैं आपसे यह बता दूं कि इस समय मैं उनतीस साल का एक नवयुवक हूँ । मुझे अभी काफी दुनिया देखनी है । इसलिये मैं, कम से कम, यह दावा तो कर नहीं सकता

कि मेरे इस तुच्छ अनुभव से आप कोई लाभ उठा सकेंगे या आपका कुछ मनोजरंन हो सकेगा। हाँ, यह बात दूसरी है कि आपको, मुझसे, मेरी यह कहानी सुनने के बाद, कुछ थोड़ी सी सहानुभूति हो जाय। और, आप यह समझ लें कि फिलहाल इस कहानी को शुरू करने में मेरा कोई और उद्देश्य है भी नहीं। अधिक सच बोलूँ, तो शायद यह भी नहीं है।

और देखिये। यह कहानी सुनाने की बात होते ही जैसे मेरी सारी स्मृति जाग सी उठी है। मेरे सामने मेरे पिछले जीवन के—आज से सात—आठ साल पहले के—सारे धुन्धले चित्र स्पष्ट होने लगे हैं। आज मैं सोचता हूँ कि मैं अपने जिन पापों की पीड़ा से व्याकुल हूँ, उनका प्रायश्चित सिर्फ मेरी एक सहमति से हो सकता था, लेकिन उस अवसर पर मैंने अपने स्वार्थवश उसका वह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। मैं अब भी कभी कभी सोचता हूँ कि मैं यदि उस समय उसकी बात मान लेता तो, तो आज कितना सुखी होता। मैं उस सुख की कल्पना भी शायद अब नहीं कर सकता हूँ। मेरी आँखों के सामने उसकी तस्वीर हर समय नाचा करती है। कभी करुणा से भरा हुआ मुखड़ा लिये और कभी प्रसन्नता से मुस्कुराते हुये चेहरे को लिये वह मुझे अपनी ओर निहारती हुई दिखाई देती है।

तो इससे पहले कि मैं अपनी कहानी शुरू करूँ, मैं आपको यह बता देना चाहता हूँ कि मैं एक भावुक, सहृदय और सुकुमार भावनाओं वाला व्यक्ति हूँ। मैंने रीता को सदैव अपने हृदय में बिठाकर रखा, उसकी एक-एक बात, उसके एक-एक अनुरोध की पूर्ति के लिये मैं अपनी सारी सामर्थ्य से हर समय तैयार रहा। मैं यह नहीं कह सकता कि उसके प्रति मेरी जो भावनायें थीं, उससे वह परिचित थी या नहीं, लेकिन इतना मैं अवश्य कहना चाहूँगा कि यदि वह मुझसे कभी प्राण देने को भी कहती, तो भी मैं तैयार हो जाता। आप सोंचेगे कि मैं यह सब बातें आपसे क्यों कह रहा हूँ। सिर्फ इसीलिये कि इन्हें पृष्ठभूमि में रखकर ही आप मेरी इस आप बीती को अच्छी तरह समझ सकेंगे। साथ ही आप यह भी ध्यान रखें कि

मैं यह सब आपसे अपनी सफाई में भी नहीं कह रहा हूँ। ऐसा हरगिज नहीं है। यद्यपि मेरा विचार है कि शायद आपको मेरे प्रयेक शब्द से यही ध्वनि निकलती जान पड़ेगी, लेकिन मैं फिर कहता हूँ कि मैं अपनी सफाई नहीं देना चाहता हूँ कि आप मुझे धिक्कारें—मेरे पाप के लिये, मेरी स्वार्थ-परता के लिये, और मैं यह अनुभव और भी तीव्रता से करूँ कि मैं पापी हूँ और अपने पापों का फल भोग रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि मैंने वही कुछ किया है, जिसके लिये मेरी स्वार्थी प्रवृत्ति ने मुझे मजबूर किया। लेकिन फिर भी, मेरा विचार है कि अगर आप ठंडे दिल से सोचेंगे, मेरी बातों पर गौर करेंगे, तो आपको इसी नतीजे पर आना पड़ेगा कि मैं काफी सीमा तक निर्दोष हूँ, और कभी-कभी मुझे भी ऐसा ही भ्रम होता है। लेकिन चूँकि मैं अपनी कमजोरियों से परिचित हूँ, अपनी असफलताओं की कहानी जानता हूँ, इसलिये यह भ्रम मेरे मन में ज्यादा देर तक टिक नहीं पाता।

अक्सर मैं भावावेग में अपनी स्वर्गीय रीता को संबोधित करके कहता हूँ—ओ मेरे इस अंधकारमय जीवन की एकमात्र ज्योति, आज मैं अपने व्यथित हृदय की करुण पुकार को रोकने में असमर्थ हूँ। मेरा पुरुषत्व आज अपने ही हृदय में प्रज्वलित अग्नि को बुझाने में असफल है। परन्तु फिर भी न जाने क्यों मेरा साहस तुम्हारे सम्मुख कुछ भी न कहने में ही सन्तुष्ट है। यदि आज तुम कहीं जीवित होतीं, तो मैं तुम्हें एक पत्र लिखकर अपने अंतर की उन गहराइयों का वर्णन करता, जिनके अनुभव के लिये मैं आगे जीवित नहीं रहना चाहता, उनको तुम्हें लिखने के साथ ही सदा के लिये अपनी आँखें बन्द कर लेता। तुम मुझे पागल समझती थीं, लेकिन साथ ही मेरा ख्याल है कि तुम इसकी वजह भी जानती होगी, अर्थात् तुम यह समझती होगी कि तुम्हीं ने मुझे पागल बना रक्खा था।

मैं भी क्या कहते कहते क्या कहने लगा, कहाँ भटक गया, लेकिन मैं एक बात और आपको बता देना चाहता हूँ कि यह सत्य है और मेरा स्वयं का अनुमान है कि पुरुष का प्यार कभी झूठा नहीं होता, क्योंकि उसका निश्चय कमजोर नींव पर कभी अवलंबित नहीं हुआ करता। एक पुरुष

जो कुछ भी सोचता या करता है, वह उसकी बुद्धि का प्रत्यक्ष प्रमाण होता है। एक स्त्री की तरह, अशक्त इच्छाओं का मात्र अस्थाई निश्चय पुरुष का गुण नहीं होता। वह जो कुछ भी करता है, दृढ़तापूर्वक करता है। वह कभी भी, एक नारी की तरह, केवल आवेगों के द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलने का दुस्साहस नहीं करता। मेरा अनुमान है कि आज के युग में प्रेम के संबंध में वे लोग एक भ्रांतिपूर्ण भावना के शिकार हैं, जो यह समझते हैं कि पुरुष केवल विनोद के लिये ही प्रेम का स्वाँग रचता है। मैं समझता हूँ कि ईमानदार पुरुष का प्रेम कभी झूठा नहीं होता।

खैर, छोड़िये इन बातों को, क्योंकि यहाँ मेरा उद्देश्य किसी प्रकार की भावनाओं या सिद्धांतों का विवेचन करना या उनके बारे में अपनी राय जाहिर करना नहीं है। मैं सिर्फ अपनी उस कहानी को आपको सुनाना चाहता हूँ, जो मेरे अन्तर को व्याकुल कर रही है और बरबस मेरी जबान पर आकर फूट पड़ता चाहती है। और जिसे कहना चाहने के लिये ही मैं इतनी इधर उधर की बातें आपसे कहा गया, जिन्हें कहना यहाँ मेरा उद्देश्य नहीं था। मेरा अनुमान है कि अब आप भी संभवतः इस फिजूल की बक-वास को छोड़कर उसे ही सुनना चाहते होंगे। तो सुनिये।

मैं उन दिनों एम० एस-सी० के प्रथम वर्ष में प्रयाग विश्व-विद्यालय में पढ़ता था। मेरे पिता की आर्थिक स्थिति बहुत असन्तोषजनक थी। इसलिये मुझे विश्वविद्यालय में टिके रहना काफी कठिन मालूम होता था। मैंने बड़ी कठिनाई से सौ रुपयों का प्रबन्ध करके विश्वविद्यालय में प्रवेश पाया था। फीस की दूसरी किश्त निर्धारित समय पर न जमा कर पाने के कारण मेरा नाम काट दिया गया, लेकिन मैंने अपने कृपालु प्रोफेसर की कृपा से कक्षा में जाता रहता था, क्योंकि उनको मुझसे कुछ विशेष स्नेह था और उन्हें यह आशा थी कि मैं किसी न किसी प्रकार से कुछ रुपयों का कहीं से प्रबन्ध करके फीस जमा ही कर दूँगा। मतलब यह कि कि मैं विश्वविद्यालय के बोनाफाइड विद्यार्थियों में नहीं था, और साथ ही मुझे अपनी शिक्षा के प्रति भी कोई विशेष रुचि नहीं रह गई थी, क्योंकि मैं उसकी तरफ से कतई आशान्वित नहीं था कि इस प्रकार से थोड़े समय तक तो कट सकती है, लेकिन पूरे दो साल तक इसी तरह गाड़ी चलाते रहना मुश्किल है। और यही वजह है कि मैं अपने शिक्षा काल में ही किसी स्थायी काम या नौकरी की तलाश में रहने लगा था।

अपने पिता जी की राय के अनुसार एक दिन मैं काम दिलाऊ दफ्तर में अपने प्रमाण पत्र आदि लेकर गया। वहाँ मुझे दिन भर लग गया। उम्मीदवारों की पंक्ति में लगभग दो झंटे तक एक पैर से खड़े रहने के बाद मेरा नम्बर आया और मैं अपना रजिस्ट्रेशन कराने में सफल हो सका। शाम को ६ बजे के लगभग टहलने लगा, यद्यपि उस समव तक हवा काफी सर्द हो चुकी थी। मेरा घर इलाहाबाद के एक घने बसे हुए मुहल्ले में था जिसमें आपस के मकानों की छतें एकदम मिली हुई थीं। इसीलिए वहाँ

बच्चे पतंग उड़ाते हुये एक छत पार करते हुये दस पंद्रह मकान पार कर जाते थे। मेरी छत के चारों तरफ बनी हुई मुंडेरें काफी नीची थीं कहीं और कहीं से टूट जाने के कारण और भी अधिक नीची मालूम होती थीं।

मैं काफी थका हुआ था, इसलिए एक मुंडेर पर दोनों हाथों के सहारे न टिक कर दूसरी तरफ झाँकने लगा और पड़ोस की छत पर खेलते हुए बच्चों को देखकर तबियत बहलाने लगा। करीब पाँच मिनट मैं यों ही खड़ा रहा। बच्चे आपस में खेल रहे थे और कभी कभी लड़ भी पड़ते थे। एकाएक मैंने देखा कि उस छत के पड़ोस वाले मकान से एक सोलह सत्रह वर्ष की लड़की "मुन्नू, मुन्नू" पुकारती हुई छत पर आ गई। मुन्नू उसे अपनी ओर लपकी आते देख, पकड़े जाने की आशंका से इधर उधर भागकर बचने की कोशिश करने लगा और वह उसके पीछे दौड़ते हुए पकड़ने की। लेकिन इस भाग दौड़ में जरा देर के ही तजुर्बे के बाद मुन्नू ने अपने आपको कमज़ोर महसूस किया और अपनी छत से मिली दूसरी छत पर, यानी मेरे ठीक पड़ोस की छत पर आकर दीवार के पास खड़ा होकर अपने दोनों हाथ ऊपर करके पकड़ाने की कोशिश करता हुआ मुझसे बोला—"रमेश चाचा, रमेश चाचा"। मैं उसका मतलब समझ गया और मैंने उसे खींच कर अपनी छत पर कर लिया। अब तक उस लड़की ने मुझे नहीं देखा था। उसका पीछा करते हुए जैसे ही वह इस छत पर आई और मैंने मुन्नू को इधर खींचा, वैसे ही उसकी आँखें मुझ से चार हुईं। वह लजा सी गई और पल्ले से सिर ढकती हुई दौड़ कर वापस चली गई, मुन्नू खुश होकर मेरी छत पर ताली बजा-बजा कर उछलने लगा।

मुझे लगा कि जैसे एक चंचल हरिणी छलाँगे भरती हुई अदृश्य हो गई हो। मैं अपने उन पड़ोसियों को बचपन से जानता था। उस मकान में एक कायस्थ सज्जन रहते थे, मेरी ही जाति के। उनके परिवार में कुल चार व्यक्ति थे, वह स्वयं, उनकी पत्नी तथा एक लड़की और एक

लड़का—मुन्नू—था। इस लड़की को तो मैने उनके यहाँ आज पहली ही बार उनके यहाँ देखा था। मैं समझ गया कि यह शायद उनके भाई की लड़की है, जो उनके यहाँ आए हुए हैं और मैंने अपनी माता जी से सुना भी था कि पड़ोस के चाचा जी के यहाँ कोई मेहमान आये हुये हैं। अपनी कल्पना ही में यह अनुमान लगाकर मेरा कुतूहल शान्त हो गया। लेकिन दूसरे ही क्षण मेरी निगाह जो फिर उधर गई, तो मैंने देखा कि वह मुझे एकटक देख रही थी और निगाह मिलते ही दरवाजे की ओट में हो गई। यह देख मुझे कुछ हँसी सी आ गई और मैं वहाँ से आकर अपने कमरे में पलंग पर लेट गया।

यहाँ मैं आपसे एक बात बता दूँ, मैं यह मानता हूँ कि पुरुष और नारी की पारस्परिक आकर्षण की भावना होती है और यह भावना युवावस्था में विशेष रूप से हावी रहती है। और मैं यह भी नहीं कहता कि मैं उस समय इस भावना से बिलकुल मुक्त था। लेकिन हाँ, इतना अवश्य है कि यह मेरी कुछ प्रकृति सी बन गई थी कि मैं किसी भी युवती के सम्पर्क से नहीं आना चाहता था। मेरे अनेक सहपाठी जब लड़कियों की चर्चा करते थे, और करते ऐसा समय एक प्रकार के आनन्द का अनुभव करते थे, उस समय मैं कुछ अनमना सा, उनकी मंडली से अलग बैठा रहता था, मानों मैं उनसे किसी भी प्रकार संबंधित नहीं होऊँ, उनसे अपरिचित होऊँ। वैसे मैं यह भी जानता हूँ कि प्रत्येक पुरुष के जीवन में—विशेष रूप से युवावस्था में—कुछ ऐसे अवसर आते हैं, जब कुछ युवतियाँ उनसे बात-चीत का अवसर खोजती हैं, और ऐसा अवसर पाने पर उसका उपयोग भी करती हैं। यह बात मैं अपने जैसे युवकों के लिए कह रहा हूँ, जो स्वभाव से ही लज्जाशील और संकोची हों, उनके लिए नही, जो ऐसे अवसरों की स्वयं से ताक में ही नहीं रहते, बल्कि किसी न किसी प्रकार से उन्हें पा भी लेते हैं। मेरे कहने का मतलब यह है कि जो युवक काफ़ी संकोची भी होते हैं, उन्हें भी बहुधा यह अनुभव होता है कि कुछ लड़कियाँ उनके संपर्क में आना चाहती हैं और साथ ही इसके लिए उन्हें किन्हीं

विशेष या साधारण अवसरों पर, अपनी हरकतों से आकर्षित करनेकी चेष्टा करती हैं। और मैं आपको बताऊँ कि मुझे भी ऐसे कई अवसरों से गुजरना पड़ा था। मैं ठीक जानता हूँ कि बिरादरी में शादी विवाह या अन्य अवसरों पर तथा विश्वविद्यालय में भी कई लड़कियों ने मुझसे कुछ बात करना चाहा था। किन्तु मैं यह नहीं कहता कि इस साधारण प्रयत्न के पीछे उनमें कोई गहरा आकर्षण या कोई विशेषता थी। यानी काफी हद तक यह चेष्टा सिर्फ शिष्टाचार तक ही समाप्त भी हो जाती। लेकिन कुछ तो अपने अहंभाव के कारण और कुछ अपनी संकोची प्रकृति से विवश होने के कारण मैं उन अवसरों पर कतरा गया था, यद्यपि मैंने फिर तुरन्त ही यह अनुभव किया था कि मेरा यह व्यवहार शिष्टाचार के साधारण नियमों के भी अनुकूल नहीं पड़ता।

तो इसी तरह जब मैंने इस बार भी इस अपरिचित लड़की को अपनी ओर एकटक देखते पाया, तो मुझे हँसी ही आई, यानी मेरे मन में उसके इस व्यवहार से कोई आकर्षण या कुतूहल नहीं उत्पन्न हुआ। और बहुत सम्भव है कि इस दिन के बाद यह बात भी आई गई हो जाती—जैसा कि अब तक होता रहता था। लेकिन सौभाग्यवश मगर ऐसा हो जाता तो मुझे अपने भयंकर दुर्भाग्य का सामना न करना पड़ता और मैं यहाँ उसकी कहानी आपको सुनाने के लिये बैठा नहीं होता, बल्कि मेरा जीवन अगर उसमें यह भयानक मोड़ न आया होता—आज कहीं का कहीं होता। लेकिन खैर, उस वक्त हुआ यह कि दूसरे दिन जब मैं हमेशा की तरह साढ़े सात आठ बजे सोकर उठा और जमुहाइयाँ लेता हुआ कमरे के बाहर निकला, तो मैंने देखा कि अपनी छत पर वह लड़की कल ही की तरह खड़ी हुई, वैसे ही एकटक मुझे ताक रही है। मुझे लगा, जैसे यह मेरे कमरे के दरवाजे खुलने का इंतजार काफी देर से कर रही हो। मुझे देखते ही उसके गोरे चेहरे पर हँसी की एक हल्की सी लहर दौड़ी और मैं इधर हट गया, उसके इस व्यवहार पर एक तुच्छ सी उपेक्षा की हँसी हँस कर रह गया।

और यहीं तक नहीं, उस दिन भी जब मैं हमेशा की तरह ग्यारह बजे विश्वविद्यालय जाने के लिये तैयार होकर घर से बाहर निकला, तो मैंने देखा कि वह अपने घर के बाहर वाले कमरे में—यानी मेरे घर के ठीक सामने—फिर खड़ी थी, मुझे लगा जैसे यह ऊपर छत से मेरी सारी हरकतें देख रही थी—मेरा सो कर उठना, स्नान करने जाना, भोजन करना, कपड़े बदलना, और कमरा बन्द करके नीचे आना, मेरे नीचे आते ही शायद वह भी दौड़कर नीचे आ गई और खड़ी थी—मेरी राह में आँखे बिछाये, हुंह, आँखे बिछाये और मेरी राह में! मैं फिर उपेक्षा की हँसी हँसकर रह गया और आगे बढ़ गया, गली के मोड़ घर पहुँचकर मैंने एकाएक पीछे घूम कर देखा—वह अब भी मेरी तरफ देख रही थी—उसी हसरत भरी निगाह से।

मैं उस दिन बराबर उसी लड़की के बारे में ही सोचता रहा और शाम को जब वापस घर आया तो मुन्नू को अपने पास बुलाकर पूछा—"मुन्नू, तुम्हारे घर कोई आया है ?"

"हाँ।"

"कौन ?"

"ताऊ जी"

"और ?"

"ताई जी"

"और ?"

"रीता जीजी।"

"रीता जीजी ?"

"हाँ रीता जीजी। वही जो कल मुझे पकड़ने दौड़ रही थीं।"

मैं चुप हो, कुछ सोचने लगा। मुझे खामोश देख वह समझता सा बोला—"अरे, आप नहीं जानते ? वाह रमेश चाचा। रीता जीजी लखनउ से आई हैं। ताऊ जी कहते है, यहाँ उनका ब्याह करेंगे।"

"रीता जीजी तुमसे बोलती हैं ?"

"हाँ, मुझसे पूछती हैं, रमेश चाचा कौन हैं, क्या करते हैं, कहाँ पढ़ते हैं, तुम्हें प्यार करते हैं या नहीं, कभी मिठाई या टाफी देते हैं या नहीं ?"

"तो तुम क्या कहते हो ?"

"मैं कहता हूँ मिठाई तो नहीं, हाँ जब पतंग उड़ाते हैं तो डोर देते हैं और कभी कभी कोई छोटी पतंग भी।"

आपके लिये यह सब कुछ सुन कर यह सोचना स्वाभाविक है कि अब शायद मैं भी धीरे-धीरे रीता के प्रति आकर्षण का अनुभव करने लगा होऊँगा और उसको लेकर किन्हीं मीठे स्वप्नों की कल्पना भी। लेकिन नहीं। मैं यह जानकर कि आप यह सोच रहे हैं, सिर्फ हँसूँगा। क्योंकि मेरा अहं उस समय किसी ऐसी भावना को स्वीकार करने में, ग्रहण करने में असमर्थ था। और इसीलिए, मैं अपने संबंध में उसे इतना उत्सुक देखकर भी उसके प्रति जरा भी कुतूहल अपने हृदय में न उत्पन्न कर सका। बल्कि यह सब सुन कर भी वैसी ही, उपेक्षा की हँसी हँसकर रह गया। लेकिन काश ! मैं वैसा ही हमेशा कर सकता, मेरी वह हँसी हमेशा मेरा साथ दे सकती।

उस दिन से कुछ ऐसा होने लगा कि मैं जब अपने कमरे में होता तो बजाय इसके कि अपनी मेज पर बैठा या अपने पलंग पर अधलेटा कोई चीज लिखूँ या किताब पढ़ूँ, मैं छत वाले दरवाजे के पीछे खड़ा, आड़ से सामने वाली छत पर ताका करता और हमेशा यही पाता कि वह खड़ी है, एकटक मेरी ओर—यानी मेरे कमरे के दरवाजे की ओर देख रही है—इस आशा से कि शायद मैं कमरे से बाहर निकलूँ, और वह मुझे देख सके, मेरी ओर देखकर धीरे से मुस्कुरा सके। और ऐसा एक-दो या चार-छै बार नहीं—मैंने हमेशा ही पाया। वह अपनी छत पर खड़ी मेरी ओर ताका करती, मैं दरवाजे के पीछे खड़ा, आड़ से उसके चेहरे पर आते जाते भावों को पढ़ने की चेष्टा किया करता, उसकी आँखों में झाँकने का प्रयत्न किया करना। मैंने देखा कि उसका रंग खूब गोरा है, उसके

बाल काले, चमकीले और लम्बे है, क्योंकि उसकी दो मोटी बल खाती नागिनों सी चोटियाँ सदैव उसके नितंबों से भी नीचे तक लटकती रहती थीं, उसके माथे पर हमेशा एक टिकुली चमका करती थी, उसकी आँखें बड़ी और नीली थीं, जिनकी गहराइयों में प्यार का सागर लहराता जान पड़ता था, उसके गुलाबी गाल, रक्तिम अधर, पतली, छोटी नासिका में उसके चेहरे की बारीकियों को पड़ने की कोशिश करता और मन में यह सोचा करता था कि अल्हड़ लड़की में वह कौन सी बात नहीं है, जो एक सुन्दरी युवती में होनी चाहिये। मैं उस समय की सुन्दरी और प्रसिद्ध अभिनेत्रियों से उसकी तुलना करता और उसके ख्यालों में खोया रहता।

लेकिन इतना सब होने के बावजूद भी मैं अपने हृदय में रीता के प्रति ऐसी कोई भावना नहीं पाता था, जो मुझमें, ऐसी परिस्थिति में स्वभावतया जागृत होनी चाहिए थी।

ऐसी ही अनाकर्षण की स्थिति में लगभग दो महीने बीत गये । इस बीच में एक सप्ताह के लिये कलकत्ते भी गया था और वहाँ से लौटकर मैंने उसे और भी व्यग्रता से हर समय अपनी ओर निहारते पाया था, लेकिन अब तक हम दोनों में कभी कोई सीधी बातचीत या इशारा नहीं हुआ था । हम लोग अपना अपना काम करते थे, लेकिन बनावटीपन से और निश्चय ही एक दूसरे को दिखाने के लिये— किन्तु प्रकट में ऐसा भाव नहीं दिखाते थे । और ऐसे ही किस प्रकार हम दोनों का सीधा संपर्क स्थापित हुआ और उसके बाद की भी अनेक घटनाओं का परिचय देने के लिये मैं अपनी डायरी के सत्रह जनवरी से चौदह फरवरी तक के अंश आपको ज्यों की त्यों सुना रहा हूँ—

सत्रह जनवरी—

आज भी जब मैं सबेरे सो कर उठा तो दरवाजा खोलते ही मैंने रीता को अपनी छत पर खड़े, वैसी ही हसरत भरी निगाह से अपनी ओर ताकते पाया । लेकिन आज उसके चेहरे पर एक प्रकार की कोई निश्चयात्मक भावना मुझे लक्षित हुई । मानों वह यह कह रही हो कि अब बहुत दिन ताका-ताकी हो चुकी । अब तक उसने मुझे बहुत से मौके दिये, लेकिन अब वह स्वयं ही कोई इनीशियेटिव लेने का निश्चय कर चुकी है । अब तक तो कम से कम हम दोनों को एक दूसरे के प्रति अपना भाव स्पष्टता से प्रकट कर ही देना चाहिये, और जहाँ तक उसका सवाल है, वह इसके लिये तैयार भी है ।

मैं आज यह नवीनता देखकर कुछ आश्चर्यचकित सा होकर उसकी ओर अजान भाव से ताकने लगा कि वास्तव में बात कुछ ऐसी ही है, या

मुझे ख़ुमारी के कारण कुछ भ्रम हुआ है। लेकिन नहीं, वह मेरा भ्रम नहीं था। क्योंकि करीब एक मिनट तक मैं उसकी ओर अपलक दृष्टि से देखता रहा—पहली बार इतनी देर तक—और मैंने देखा कि वह मुझे सिर्फ ताक ही नहीं रही है, बल्कि ऐसा करने के साथ ही साथ धीरे धीरे मुस्कुराती भी जा रही है। उसे यों मुस्कुराते देखकर मैं भी सहज भाव से धीरे से हँस दिया और दूसरे ही क्षण मैंने देखा कि वह कुछ लजा कर दरवाजे की ओट में हो गई।

यह पहला अवसर था जब हम दोनों ने इस प्रकार एक दूसरे से निगाहें मिलाई और मुस्कुराये।

० ० ० ०

दोपहर को विश्वविद्यालय जाते समय जब मैं भोजन करके बाहर निकलने लगा तो मैंने आज हमेशा की तरह पान खा नहीं लिये, बल्कि हाथ में ही लिये रहा और जब घर से बाहर निकला, तो मैं हाथ में पान कुछ इस ढंग से पकड़े हुये थे कि सामने खड़ी रीता उन्हें बिना किसी प्रयत्न के अवश्य देख लेती। सच पूछिये तो पान मैं इसीलिये हुआ लिये था कि अगर वह आज भी नीचे मेरी प्रतीक्षा में खड़ी होगी तो एक उसे दे दूँगा। और जब मैं उसके कमरे के दरवाजे तक पहुँचा तो अपनी आशा के ही अनुरूप मैंने उसे वहाँ खड़े भी पाया। लेकिन तब तक मैंने पाया कि मेरा अहं फिर जाग उठा है, और अपनी स्वाभाविक प्रकृति को मैं इस साधारण अवसर पर भी न झुका सका। शायद मैं वैसे ही आगे बढ़ गया होता, लेकिन इसी अवसर पर रीता ने हाथ से इशारा करते हुये मुस्कुरा कर पान माँगे और मेरे दोनों पान आगे बढ़ाने पर, झिटक कर दोनों ही ले लिये। मैं उसकी इस हरकत से झप गया और फिर उसने स्वयं ही एक पान मुझे लौटा दिया, जबरदस्ती। ऐसा करते समत मेरी और उसकी उँगलियाँ आपस में छू गई और हम दोनों ने ही समान रूप से कुछ अजीब सा अनुभव किया।

० ० ० ०

शाम को विश्वविद्यालय से वापस आकर मैं छत पर टहल रहा था

और रह-रह कर उसकी ओर झाँक लेता था। मैंने देखा कि मुझे अधिक देर तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी, क्योंकि वह जान चुकी थी कि मैं वापस आ गया हूँ और ऊपर आ चुकी थी। हम लोगों का पारस्परिक संकोच अब तक कुछ कम हो चुका था। मैं हाथ में एक संतरा लिये हुआ था। कुछ आपसी इशारों के बाद मैंने वह संतरा उसे दिखाया और ले जाने का संकेत किया। वह हलके पैरों से चलती हुई, दूसरी छत पर आई और फिर मेरे सामने आकर दीवाल के उस ओर खड़ी हो गई। हम लोगों के कंधे तक, या उससे भी जरा ऊपर तक—दीवार थी। मैं कुछ एड़ी पर खड़ा हो गया और उसे संतरा पकड़ा दिया। चाहा कि उसका हाथ पकड़ लूँ, लेकिन ऐसा नहीं किया। हाँ, उसने एक बार अपनी बड़ी बड़ी आँखों से एक गहरी, नशीली चितवन मेरे ऊपर डाली।

"तुम्हारा नाम क्या है ?" मैंने धीरे से पूछा।

"रीता।" उसने सिर झुका कर उत्तर दिया।

"और आपका ?" उसने मेरी तरफ देखकर पूछा।

उसकी बात का जवाब देने से पहले ही, यानी अपनी बात का उत्तर पाते ही मैं इधर आ चुका था।

यह हमारे प्रेम का पहला दिन था।

अठारह जनवरी—

आज सबेरे जागने पर मैंने कुछ उत्सुकता से दरवाजे खोले। देखा, वह सामने खड़ी है। मैंने गौर से देखने की कोशिश की—वही मुस्कुराहट, वही ताजगी, वही कौमार्य और अछूते यौवन का परिचय देने वाले भाव। मैं आँख भर उसे देख भी न पाया था कि वह नीचे चली गई। शायद किसी ने आवाज देकर उसे बुलाया था। मैं उसके दुबारा आने की प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी ही देर बाद वह हाथ में चाय का प्याला सम्हाले हुये वापस आई और एक बार मुझे दिखाकर—(अर्थात् पीजियेगा ?)—धीरे धीरे चाय पीने लगी। बीच-बीच में, मुझे लगातार अपनी तरफ घूरते देखकर मुस्कुरा देती थी यानी पूछना चाहती थी—ऐसे क्या ताक रहे हैं ?

कुछ देर बाद माँ ने नीचे पुकारा और मैं भी चाय पीने चला गया।

० ० ० ०

आज दोपहर को विश्वविद्यालय जाते समय मैंने पान उसके हाथ में न देकर एक कागज में लपेटकर उसकी ओर फेंक दिया। मैं आगे बढ़ गया था कि कान में हलकी सी आवाज पड़ी। वह पूछ रही थी "कितने बजे आइयेगा ?"

मैंने मुड़कर पीछे देखा और उँगलियाँ उठाकर उसे इशारे बताया कि तीन बजे।

० ० ० ०

शाम को जब मैं लौट कर आया, तब वह नहीं थी। मुझे मालूम हुआ कि वे लोग कुछ कपड़ा वगैरह खरीदने गये हुये हैं। फिर रात के नौ बजे के करीब जब मैं दोस्तों से गप लड़ा कर वापस लौटा, तो उसके घर के सामने बहुत धीरे से सीटी बजाई—बाहर के कमरे में रोशनी देखकर। मेरा अनुमान ठीक निकला। उसने भी खाँस कर जवाब दिया।

उन्नीस जनवरी—

आज सबेरे मैंने उसे इशारे से बुला कर उसके काले, बड़े जूड़े में एक ताज़े, लाल गुलाब का खुशबूदार फूल लगा दिया। फूल लगाते समय मैंने देखा कि उसके रक्तिम अधर सिकुड़े जा रहे थे, गुलाबी गालों पर लाली आ गई थी और आँखें कुछ शरमा-सी जाकर नीचे झुक गई थीं।

इसके कुछ ही समय बाद मैंने उसे एक चिट्ठी भी लिख कर दी—अंग्रेजी में—जिसे पढ़ने के लिये वह अपने घर चली गई और फौरन ही वापस आकर बोली कि अंग्रेजी में नहीं, हिंदी में लिखिये, क्योंकि अंग्रेजी उसकी अच्छी तरह समझ में नहीं आती है। मैंने हँसकर चिट्ठी वापस ले ली और हिन्दी में लिखकर देने का वादा किया।

● ० ० ०

शाम को जब मैं विश्वविद्यालय से लौटा तो उसके लिये पुड़िया में कुछ केक लाया था। ऊपर बुला कर मैंने पुड़िया उसके हाथ में पकड़ा दी, और

उसके शरमा कर सिर झुका लेने पर उसको ठोढ़ी को ऊपर उठाकर उसका मुँह अपनी तरफ किया। उसने एक बार नजर मिलाई और फिर झुका ली। मैंने उसके वक्ष के उतार चढ़ाव को देखकर उसके हृदय की बढ़ती हुई धड़कनों का अनुमान लगाया।

बीस जनवरी—

इस तारीख को डायरी में कुछ नहीं लिखा है।

इक्कीस जनवरी—

आज सबेरे जब वह मेरे बुलाने पर इधर आई, तब मैंने देखा कि वह कुछ अजीब सी बातें कर रही है। उसकी बातों में से मुझे यह मालूम हुआ कि शायद उसके विवाह की बातचीत उसके माता पिता कहीं कर रहे हैं।

शाम को मैंने उसे फिर बुलाया, लेकिन वह नहीं आई। यद्यपि बात साधारण थी, और मैं समझता था कि मेरा उस पर कोई अधिकार नहीं है, लेकिन वह मुझे बुरा मालूम हुआ। मैं कुछ गुस्से में बाहर चला गया।

कुछ देर बाद मैं लौट कर आया और छत पर टहलने लगा। मैंने पाया कि वह मुझे देखकर स्वयं ही इस बार चली आई है और दीवाल के उस ओर खड़ी है। मैंने कनखियों से यह भी देखा कि वह काफी हसरत भरी निगाहों से मेरी तरफ देअ रही है और यह अनुमान लगाया कि शायद वह यह सोच नही है कि अगर मैं उसकी तरफ देखूं तो वह मुझे कुछ इशारा करे, अपने पास बुलाये। जब काफी देर हो गई तो वह कुछ जोर से बोली ताकि मैं सुन सकूं—"आप नाराज हैं क्या ?"

मैंने सुना और उसके निकट जाकर रूखी आवाज़ में कहा—"मैं नाराज भी होऊँ, तो तुम्हें क्या परवाह ?"

और यह कह कर मैं जैसे भागता हुआ वहाँ से चला गया ताकि आगे अगर वह कुछ कहना चाहे, तो उसके शब्द मेरे कान में न पड़ें।

गली में पहुँच कर मेंने देखा कि वह मुझसे भी तेज चल कर नीचे आ गई है और कमरे के दरवाजे पर खड़ी हुई मुझे देख रही है, उसी तरह हसरत भरी निगाह से। मैं अपने को रोक न सका और बजाय आगे बढ़

जाने के, बिना कुछ सोचे, उसके कमरे में चला गया। कमरे में और कोई नहीं था। मैंने उसका हाथ अपने काँपते हुये हाथ से पकड़ा और उसे खींच कर आलिंगन में ले लिया। एक क्षण हम दोनों वैसे ही खड़े रहे और एक दूसरे के हृदय की धड़कनों को सुनते रहे। इतने में घर के अंदर खुलने वाले, कमरे के दरवाजे को ढकेलता हुआ मुन्नू, "रीता जीजी, रीता जीजी" कहता हुआ कमरे में घुसा और वहाँ मुझे और रीता को इस अवस्था में पाकर कुछ चौंका। हम दोनों झिटके के साथ अलग हो गये। मुन्नू सिर्फ "अरे, रमेश चाचा !" ही कह सका था, कि मैं तेजी से कमरे के बाहर हो गया।

बाइस जनवरी—

आज दिन भर वह कुछ गुमसुम सी दिखाई दी, साथ ही कुछ डरी हुई सी भी। शायद कल रात की घटना उसके माता-पिता को मालूम हो गई थी। और आखिर मालूम हो भी क्यों न जाती ? मुन्नू कोई डेढ़ दो वर्ष का बच्चा तो है नहीं, जो कुछ समझे न।

मुझे उसकी हालत पर तरस आ रहा है, क्योंकि मैं जानता हूँ कि वह बेचारी ख्वामख्वाँह परेशान होगी। शायद उसके माँ बाप ने उसे भला बुरा समझाया हो, या हो सकता है, डाँटा फटकारा भी हो। एक क्षण तक मैं यह सोचता हूँ कि यह सब खिलवाड़ छोड़ना चाहिये, यह नाटक बंद करना चाहिये, और अपने काम-धंधे से लगना चाहिये, लेकिन दूसरे ही क्षण जब मैं अपने हृदय को टटोलता हूँ तो पाता हूँ कि वह उसमें काफी जगह बना चुकी है। मैं यह अनुभव करता हूँ कि शायद अनजाने में ही, हँसी-हँसी में ही, हम दोनों एक ऐसे रास्तेपर चल चुके हैं, और काफी आगे आ गये हैं, जो न सिर्फ अनजाना ही है, बल्कि काफी बीहड़ भी है। साथ ही मैं अब अपनी थोड़ी जिम्मेदारी भी महसूस करता हूँ, क्योंकि मैं यह नहीं चाहता कि मुझको लेकर रीता की बदनामी हो और तरह तरह की अफवाहें उड़ाई जायें।

तेइस जनवरी—

आज मैं सबेरे से ही काफी परेशान था। दस बजते-बजते मैंने एक

चिट्ठी लिखी और किसी तरह रीता तक पहुँचा दी। उसमें मैंने लिखा था कि चूंकि हम लोग अब तक एक दूसरे के काफी निकट आ चुके हैं, लेकिन फिर भी अगर हम दोनों अभी भी समझें तो यह रास्ता बदला जा सकता है। वरना आगे चलकर यही हमारे दुखमय जीवन का कारण बन सकता है। मैंने उसे लिखा था कि अगर वह मुझे भुला दे और मैं उसे, तो शायद हम लोग आगे चलकर अपना जीवन सामान्य ढंग से, सुखपूर्वक बिता सकते हैं। मैंने उससे शाम तक जवाब माँगा था और स्वंय मन ही मन यह निश्चय कर लिया था कि मैं अब उसे हमेशा के लिए भुला दूँगा।

(आज मैं सोचता हूँ कि अगर उस समय मेरी यह बुद्धि कुछ समय तक अपना प्रभाव मेरे हृदय पर रखती और हम दोनों वास्तव में एक दूसरे को भुला देने का प्रयत्न करते तो शायद हम दोनों का ही भविष्य सुधर जाता, आशामय बन जाता, लेकिन अगर ऐसा होता तो मैं आपको अपने दुर्भाग्य की कहानी सुनाने ही क्यों बैठता ?)

* * * *

शाम को वह मेरे पास आई और उसने अपना हाथ मानों बड़े कष्ट से उठाकर मेरी चिट्ठी मुझे वापस दे दी, उसका जवाब नहीं दिया। मैंने उसकी ओर देखा, उससे निगाह मिलाई। उसकी गीली आँखों से मुझे सब कुछ मालूम हो गया। मैंने उसके उदास चेहरे पर आँखे गड़ाये हुए कहा—"रीता, मुझे भूल जाओ।"

"आपको अब कैसे भूल सकती हूं ? कभी नहीं।" उसने धीरे से सुबकते हुये कहा।

लेकिन मैं वहाँ से भाग जाना चाहता था, क्योंकि उसकी वह दशा देखना मेरे लिये कठिन हो रहा था, जिसमें उस समय वह थी। मैंने धीरे से उसका हाथ दबाते हुये कहा—"अच्छा विदा, हमेशा के लिये" मानों मैंने उसकी बात सुनी ही न हो। और मैं वहाँ से हट आया।

वह शायद मुझे वहाँ रोकना चाहती थी, लेकिन मेरे हट आने पर

थोड़ी देर मेरी तरफ देखती रही और फिर धीरे धीरे कदम रखती हुई वापस चली गई।

चौबीस जनवरी—

आज मैं उससे न मिलने की कसम खा चुका था। मैंने अपने कमरे के दरवाजे की ओट से झाँककर देखा देखा, वह बराबर वहीं खड़ी रही थी। लेकिन मैं बाहर नहीं आया। दिन भर उसे मायूस और परेशान देखकर, शाम को मैं जैसे उससे भेंट करने को व्याकुल होकर से बाहर निकला। तब वह वहाँ नहीं थी। मैंने काफी देर तक प्रतीक्षा की, परंतु जब वह नहीं आई, तो मैंने गली में आकर देखा और पाया कि उसके घर में ताला पड़ा था और सब लोग कहीं गये हुये थे।

पच्चीस जनवरी—

छब्बीस जनवरी—

सत्ताइस जनवरी—

अट्ठाइस जनवरी—

डायरी में इन चार दिनों के कागज फटे हुये हैं।

उनतीस जनवरी—

आज कई दिन बाद उससे भेंट हुई। वे लोग कटरे में रहने वाले किसी रिश्तेदार के यहाँ चले गये थे और आज वहाँ से वापस आये थे। शाम को जब मैं काफी अँधेरा हो जाने पर घूमघाम कर वापस आया, तो वह मुझे बाहर दरवाजे पर खड़ी मिली। उसके माँ बाप अन्दर खाना का रहे थे, इसलिये मैं काफी देर तक वहीं खड़ा रहा और उससे बातें करता रहा। उसने मुझे बताया कि इन दिनों मेरी सूरत हमेशा उसकी आँखों के सामने नाचती रही है। उसने अपने दिल की और भी बहुत-सी बातें बताईं जिनसे नतीजा यह निकला कि अब उसके लिये मुझे भुलाना बहुत मुश्किल है। मैं सब सुनता रहा और धीरे-धीरे उसकी हथेली सहलाता रहा। जब वह सब शिकवे और गिले कर चुकी तब मैंने उससे समझाकर कहा—"देखो,

अब हम दोनों की भलाई इसी बात में है कि हम दोनों एक दूसरे को भूल जायें।"

यह सुनते ही सहसा उसके तेवर बदल गये। वह महीन, लेकिन तीखी आवाज में बोली—"तो क्या इसीलिये यह सब कर रहे थे ?"

मैं कुछ न बोला और सीधे घर चला आया।

तीस जनवरी—

आज सबेरे मैंने उसे इशारे से बुलाया और एकाएक उससे पूछा—"एक बात बताओगी ?"

"क्या ?" उसने सहज भाव से अपनी भारी पलक उठाकर पूछा।

'तुम मुझे चाहती हो ?"

मेरा यह प्रश्न उसे कुछ अजीब सा मालूम हुआ। वह फीकी हँसी हँसते हुये बोली—"यह भी कोई पूछने की बात है ?" और फिर उसने अपनी निगाह नीची कर ली।

वह वहीं खड़ी रही और मैं चला आया।

इकत्तीस जनवरी—

आज शाम को मैंने उसे इशारे से दीवाल के पास बुलाया और धीरे से उसका हाथ अपने हाथ में लेकर उसकी आँखों में आँखें डालते हुए कुछ मुस्कुराते हुए कहा—"आओ, मुँडेर फांद कर मेरे कमरे में आ जाओ।"

उसने एक बार मेरी आँखों में झाँका, फिर धीरे से निगाह नीची कर ली। बोली—"मेरे ऐसे भाग्य कहाँ ?

एकाएक मैंने कहा—"देखो, तुम मुझे एक चिट्ठी लिखकर दे दो।

उसने वैसे ही निगाह नीची किये हुए कहा—"चिट्ठी नहीं देंगे और चाहे सब कुछ कर लीजिए।"

मैं फिर मुस्कुराया और उसकी ठोढ़ी उठाकर उसका मुँह अपनी तरफ करते हुए पूछा—"सब कुछ कर लें ?"

उसने एक बार धीरे से मुस्कुराया और फिर हाथ छुड़ा कर भाग गई।

* * * *

इसके बाद डायरी में एक फरवरी से लेकर बारह फरवरी तक के कागज फटे हुए हैं।

* * * *

तेरह फरवरी—

आज मैंने उसे बताया कि मैं कल अपने एक मित्र की शादी में बारात के साथ जा रहा हूँ। तीन दिन में वापस आ जाऊँगा। वह यह सुनकर उदास सी हो गई। कुछ बातचीत और होती, लेकिन उसकी माँ ने उसे आवाज दी और वह चली गई।

चौदह फरवरी—

आज उसने कहा कि वह मेरे बिना यह तीन दिन कैसे काटेगी, अगर मैं उसे अपनी फोटो देकर नहीं जाऊँगा। मैं कुछ हँसा और फिर कमरे में जाकर उसे अपनी एक फोटो लाकर दे दी।

चौदह तारीख की रात को नौ बजे की गाड़ी से बारात लखनऊ को जानी थी। मैं शाम तक ही अपना सामान लेकर सिविल लाइंस पर रघुनाथ के घर पहुँच गया। वहाँ जाकर देखा कि तैयारियाँ काफी तेजी पर थीं। प्रत्येक व्यक्ति ऐसा व्यस्त और परेशान दिखाई देता था, मानो वह स्वयं ही समधी हो और विवाह का सारा उत्तरदायित्व उस पर ही हो।

रिक्शे पर से अपना सूट-केस और होल्डाल उतार कर मैंने पैसे देकर रिक्शेवाले को बिदा किया। चाहता था कि किसी आदमी को रोककर पूछूँ कि रघुनाथ कहाँ है, लेकिन उनकी हवाई चाल देखकर हिम्मत न पड़ती थी। आखिर एक सज्जन को—जो बड़ी तेजी से कई बार इधर से उधर आ-जा चुके थे और दो-एक बार मुझ पर भी प्रश्नसूचक दृष्टि डाल चुके थे—रोक कर उनसे पूछा—"क्यों भाई साहब, आप बता सकते है कि मिस्टर रघुनाथ कहाँ हैं ?"

"ऐं।"—वह महाशय इस प्रकार चौंके, जैसे मैंने उन्हें रोक कर कोई बड़ा भारी काम बिगाड़ दिया हो, और तीन कोने का मुंह बनाकर बोले—"रघुनाथ ? वह अंदर है।"

यह कहकर, इससे पहले कि मैं उनसे अगला प्रश्न पूछूँ, वह झपट कर दूसरी ओर चले गये और फिर वैसे ही, पहले की तरह, इधर से उधर और उधर से इधर आने-जाने लगे।

मैंने कुछ साहस किया और धीरे-धीरे कदम रखता हुआ घर के अंदर पहुँच गया। आँगन में जाकर देखा, बीसियों स्त्रियों से घिरा हुआ रघुनाथ दूल्हा बना बैठा था और कोई विधि संपन्न हो रही थी।

मैं चुपचाप वापस लौट रहा था कि किसी ने कंधे पर हाथ रखकर कहा—"अरे रमेश, तुम कब आये ?"

मैंने चौंककर देखा—प्रकाश खड़ा मुस्कुरा रहा था।

"सामान कहाँ है ?"—उसने आत्मीयता से पूछा—"चल तो रहे हो न ?"

"हाँ, बाहर रखा है।"— मैने उससे कहा और उसके साथ बाहर चला आया।

उसने चटपट सामान उठवा कर ठिकाने पर पहुँचवा दिया और इधर-उधर की बातें करने लगा।

"मोहन और राम वगैरह नहीं आये ?"—मैंने उससे पूछा।

"मोहन तो आता होगा। राम शायद नहीं जायेगा।"—वह बोला—"और हाँ रमेश, किशन भी चल रहा है।"

"अच्छा तब तो खूब रौनक रहेगी।"

"हाँ यार।"—वह मेरे हाथ पर हाथ मार कर बोला—"बस मजा आ जायेगा।"

"बारात कितने बजे तक चलेगी ?"—मैंने उससे पूछा।

"यही सात-आठ बजे तक।"—उसने उत्तर दिया और बोला—"रघुनाथ से मिले ?"

"अभी तो नहीं।"

"तो चलो।"—वह मेरा हाथ पकड़ कर घर के अंदर ले जाता हुआ बोला—"वह तो आज बिल्कुल···"।

"गुड्डा मालूम होता है।"

वह हँस पड़ा।

एकाएक जैसे उसे याद आ गया हो। वह मुझसे बोला—"चलो कुछ जलपान तो कर लो।"

"नहीं भाई, अभी तो खाकर ही आया हूँ।"

"अमाँ छोड़ो भी।"—वह मेरी पीठ पर हाथ मारता हुआ बोला—

"अब दो-तीन दिन के लिये यह संकोच छोड़ दो। वरना बारात का मजा ही क्या ?"

इसी समय रघुनाथ सामने से आता दिखाई दिया।

"अरे रघुनाथ।"—प्रकाश उसे देखते ही चिल्लाकर बोला—"देखो, रमेश बाबू आ गये।"

रघुनाथ अपनी टोपी, दुपट्टा और उसमें बँधे हुये नारियल सँभालता हुआ मेरी तरफ बढ़ा और पास आकर बोला—"कब आये ? चल रहे हो न ? सामान कहाँ है ?"

"सामान रखवा दिया।"—मेरे कुछ कहने से पहले ही प्रकाश बोल उठा।

इसी समय अंदर से रघुनाथ को किसी ने पुकारा और वह "अभी आता हूँ" कहकर लपका हुआ अंदर चला गया।

हम लोग फिर बातों में लग गये।

थोड़ी ही देर बाद रघुनाथ के पिता जी दौड़े हुये एक तरफ से आये और बोले—अरे प्रकाश, तुम अभी यहीं खड़े हो ? सामान स्टेशन भिजवाओ। बाहर गाड़ियाँ आ गईं कि नहीं ?"

और यह कह कर वह प्रश्न सूचक दृष्टि से प्रकाश की तरफ देखते हुये दूसरी ओर चले गये। प्रकाश भी उनसे "अभी जाकर देखता हूँ" कहकर मुझे लेकर बाहर चला आया। एक बड़ी ट्रक दरवाजे पर खड़ी हुई थी और उसमें सामान लादा जा रहा था।

प्रकाश किसी काम से अंदर चला आया। मैं वहीं खड़ा रहा और देखा कि सामान रखा जा चुकने पर ट्रक स्टेशन के लिये रवाना हो गई और दो-एक आदमी भी सामान के साथ चले गये। बाद में धीरे-धीरे और भी आदमी तैयार होते और स्टशन पर सवारियों में जाते दिखाई दिये।

अब आसपास के वातावरण में काफी तेजी दिखाई दे रही थी। कोला-हल एकाएक बढ़ गया था। कभी-कभी प्रकाश भी जिम्मेदार लोगों की तरह प्रबंध करता हुआ बाहर आ जाता था और फिर वापस चला जाता था।

मेरी समझ में न आ रहा था कि मैं क्या करूँ, इसीलिये चुपचाप खड़ा था।

पाँच-सात मिनट बाद प्रकाश एक हाथ में मीठे और दूसरे में नमकीन की तश्तरियाँ लिये हुये आया और मेरे हाथ में जबरदस्ती देता हुआ बोला—"लो भाई, थोड़ा सा कुछ खाकर पानी तो पी ही लो, वरना तुम नाजुक मिजाज आदमी हो और बारात का मामला है। तुम तो यह जानते ही हो, कि रात को न जाने किस वक्त तक खाना पीना हो।"

मुझे कुछ भूख मालूम भी हो रही थी, इसलिये मैंने चुपचाप खाना शुरू कर दिया। इतने में प्रकाश दौड़कर एक कुल्हड़ चाय भी ले आया। वह भी पी लेने के बाद मैं फिर पहले की तरह इधर-उधर हो रहे इंतजाम में रुचि लेने लगा।

अब सवारियाँ आने लगी थीं और एक-एक, दो-दो बाराती स्टेशन जाने लगे थे। काफी देर तक प्रतीक्षा करने के बाद मैं भी एक ताँगे पर—जिस पर तीन सवारियाँ बैठ गई थीं और चौथी की जगह खाली थी—उचक कर बैठने वाला था कि पीछे से प्रकाश आकर मेरा कोट पकड़कर खींचता हुआ बोला—"अररर, ऐसी भी क्या जल्दी है रमेश। हम-तुम रघुनाथ के साथ चलेंगे।"

"एक ही बात है।"—कहता हुआ मैं कुछ झेंपता हुआ सा उसके साथ चला आया। वह मुझे उस कमरे में ले आया जहाँ रघुनाथ कपड़े बदल रहा था और वहीं रहने को कहकर दौड़ता हुआ फिर किसी काम से चला गया।

"नाश्ता कर चुके ?"—मोजा जूता पहनते हुये रघुनाथ ने पूछा।

"हाँ, अभी-अभी।"—मैंने कहा और चुपचाप उसकी ओर देखने लगा।

बहुत धीरे-धीरे उसने कपड़े पहने और फिर शीशे के सामने खड़ा होकर पंद्रह मिनट तक अपना मुँह निहारता रहा, बाल ठीक करता रहा।

"तुम तो यार अभी से इतनी साज-सजावट कर रहे हो, जैसे सीधे जनवासे में जा रहे हो।"—मैंने कुछ झुँझलाकर कहा।

"कहाँ जी ? जरा मुँह-हाथ तो साफ कर लूँ। तमाम रोली लगी हुई है।"—उसने एक बार मेरी तरफ देख कर धीरे से मुस्कुरा कर कहा—"बस, एक मिनट में चलता हूँ।"

इसी समय "रघुनाथ, रघुनाथ" की कान फाड़ने वाली आवाजें आने लगीं। रघुनाथ उन्हे सुनकर फर्श पर पड़ा हुआ अपना दुपट्टा उठा कर बाहर की तरफ दौड़ा।

मैं वहाँ फिर अकेला रह गया था। मेरी समझ में न आ रहा था कि क्या करूँ। घर के शोर के कारण कान फटे जा रहें थे। मेरी झुँझलाहट बढ़ती जा रही थी।

और उस समय मैं यह अनुभव कर रहा था कि मेरे हृदय में एक प्रकार की पीड़ा सी हो रही है—मीठी-मीठी सी, क्योंकि मैं रीता से तीन दिन के लिये अलग हो रहा था।

*　　*　　*　　*

गाड़ी में एक डिब्बा पहले ही रिजर्व करा लिया गया था, इसलिये जगह की तो कोई खास दिक्कत नहीं हुई, लेकिन साथ के लोगों ने सोने भी न दिया। मैं रघुनाथ, प्रकाश और मोहन साथ ही बैठे थे, दो-दो आमने-सामने। प्रकाश ताश की गड्डी निकालने वाला था कि रघुनाथ ने संकेत से मना करते हुये उसे समझाया कि नाना जी से बातें करना ज्यादा अच्छा रहेगा।

हम सबकी निगाहें एक साथ ही नाना जी के चेहरे पर जम गईं। करीब सत्तर वर्ष की आयु, बदन कसरती, लेकिन बुढ़ापे के कारण कमजोर, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ी हुई, आँखें छोटी-चमकीली, बदन गोरा, मुँह कुछ सफद-सा, वेशभूषा साधारण, बातूनी बहुत।

"नाना जी, ये लोग मेरे दोस्त हैं, साथ ही पढ़ते हैं"—रघुनाथ ने जैसे हम तीनों का परिचय देते हुये कहा।

नाना जी की निगाह हम सब पर बारी-बारी से पड़ी और हमने उन्हें प्रणाम किया।

"जीते रहो।"—नाना जी ने कुछ खुश होते हुये कहा।—"मालूम होता है कि तुम लोग भी इलाहाबाद के ही रहने वाले हो ? है कि नहीं ?"

हम में से कोई बोले, इससे पहले नाना जी के पड़ोस में बैठा एक अधेड़ आदमी जो उनके गाँव का ही मालूम होता था, बोल उठा—"सो तो है ही, भला आप झूठ····· ।"—हकलाहट की वजह से आगे के शब्द न बोल सका।

"एक जमाना हो गया"—नाना जी एक ठंडी साँस लेते हुये बोले, मानो कोई पुरानी बात याद कर रहे हों—"वह इलाहाबाद ऐसा थोड़े ही था, जैसा आज है। तब के और अब के इलाहाबाद में जमीन आसमान का फर्क है। है कि नहीं ?"

नाना जी का साथी फिर स्वाभाविक रूप से बोल उठा—"सो तो है ही, भला आप झूठ·····।"

नाना जी ने एक बार फिर हम सबके चेहरों पर बारी-बारी से निगाह डाली और बोले—"तब तो तुम लोगों में से शायद कोई पैदा भी नहीं हुआ होगा। है कि नहीं ?"

"सो तो है ही भला आप झूठ·····।"

नाना जी फिर कुछ कहना शुरू करने वाले थे कि रघुनाथ ने बीच में ही टोक कर कहा—"नाना जी, मैंने इन लोगों से आपके शेर के शिकार के बारे में बतलाया था। ये लोग भी थोड़ा बहुत शौक रखते हैं शिकार में। इन्हें अपने कुछ तजुर्बे·····।"

"शिकार"—नाना जी ने कुछ उत्साह भरे स्वर में, लेकिन मुँह बनाकर कहा—"आजकल के जमाने में क्या शिकार ? इसके लिये कलेजे में हिम्मत भी होनी चाहिये। शिकार का तो वही जमाना था। है कि नहीं ?"

"सो तो है ही। भला आप झूठ·····।"

रघुनाथ ने कहा—"नाना जी कभी आप ने शेर का शिकार·····?"

"हुँह।"——नाना जी कुछ उपेक्षा से हँसे। बोले—"अरे शिकार तो

शेर का ही होता है। और नहीं तो भला कोई मछली, चिड़िया मार लेना भी शिकार कहा जायेगा ? ये सब तो आज कल के शिकार हैं और तुम लोग इसी को शिकार समझते हो। अरे हमारे जमाने में तो बस शेर का शिकार होता था। यह उस बार का जिक्र है, जब जिले के अंग्रेज हाकिम के साथ मैं राजस्थान के जंगलों में शिकार के लिये गया था। ओफ, याद करता हूँ तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं।"

नाना जी जरा देर के लिये रुके, मानों उस रोमांचकारी कल्पना ने उनके शरीर को वास्तव में कँपकपा दिया हो। और फिर आँखों में एक नई चमक पैदा करके करने लगे—"हाँका लगवाया गया और हम लोग घोड़ों पर सवार होकर जंगल में घुस पड़े। मैंने साहब से लाख कहा कि मचान पर बैठकर शिकार खेलना अच्छा रहेगा, यहाँ के शेर बड़े खूंख्वार होते हैं, लेकिन भला वह क्यों मानने लगा। आखिर मर्द आदमी था न ? बोला—"ठाकुर साब, मचान पर से तो मेम लोग शिकार खेलता है। तुम डरता है क्या ?"

मेरी बाहें फड़कने लगीं। मूँछों पर ताव देते हुये मैंने कहा—"नहीं साहब, यह तो मैंने आपकी सहूलियत के लिये कहा था।"

"और यह कहते-कहते मैंने घोड़े को एड़ लगा दी। साहब भी घोड़ा बढ़ाये रहा। पूरे तीन घन्टे तक तेज धूप में हम लोग घने जङ्गलों में भटकते रहे। शेर तो शेर, शेर का बच्चा तक कहीं नजर न आया। साहब तो हिम्मत हार चुक था, लेकिन मैं धीरज धरे रहा।"

"एकाएक एक तरफ से हाँके का शोर बढ़ा। हम लोग यह समझने की ही कोशिश कर रहे थे कि किस मुकाम पर यह शोर हो रहा है कि एक झाड़ी के पीछे से पूरा बारहफुटा, जङ्गली, खूँख्वार शेर गरज कर हमारे घोड़ों के सामने दस गज के फासले पर, अपने पिछले पैरों से खड़ा, चिनगारियाँ छोड़ती आंखों से हमें घूरने लगा।"

"साहब के तो, यह देखकर देवता ही कूच कर गये। उसने एक बार घबड़ाकर पीछे देखा और किसी भी मददगार को न पाकर

उसके हाथ-पाँव फूल गये, राइफल हाथ से छूट कर दस फ़ुट दूर जा गिरी।"

"साहब की यह हालत देखकर मुझे उसके लिये फिक्र हुई. मैंने बंदूक के कुंदे से उसके हाथ को छूकर कहा—"साहब, जरा भी हिलिये-डुलियेगा नहीं, जान का खतरा है।"—और मैंने बंदूक से शेर की खोपड़ी का निशाना साधा।"

"करीब तीन मिनट तक हम तीनों चुप खड़े रहे। बिना जरा भी हिले और उसके बाद शेर एकाएक छलाँग मार कर उचका।"

"मैंने घोड़ा दबा दिया। और धायँ धायँ दो फायर कर दिये।"

"इसके बाद न मुझे कोई होश रहा, न साहब को, शायद शेर ने एक ही झापड़ में हम दोनों को घोड़े से लुढ़का दिया होगा।"

"होश में आने पर मैंने देखा, साहब एक अखबार का पंखा बना कर, मुझ पर झुका हुआ हवा कर रहा था और आस-पास तमाम लोग खड़े थे। वह बारहफुटा शेर भी वहीं पड़ा हुआ था।"

"दो गोलियों ने उसकी खोपड़ी फाड़ दी थी।"

"उसी दिन से साहब ने शिकार के मामले मुझे अपना उस्ताद मान लिया जब शिकार पर जाता, मुझे बुलाने को मोटर पहले भेज देता।"

नाना जी इस बार जरा ज्यादा देर के लिये साँस लेने को फिर रुके। तब बोले—"शेर तो बहुत मारे, लेकिन वह बारहफुटा शेर? एक भी नहीं, और आज-कल तो शिकार बिलकुल तमाशा होता है, है कि नहीं?"

"सो तो है ही। भला आप झूठ...?"—उनके साथी फिर बोल उठे।

लेकिन नाना जी को इस बार उनका बोलना अखर गया। झल्लाकर बोले—"अमाँ, चुपो भी, क्या बीच में टायँ-टायँ लगाये रहते हो? मालूम होता है, तुम्हारा दिमाग खराब होगया है? है कि नहीं?"

"सो तो है ही। भला आप झूठ..."

और नाना जी के सो जाने पर रघुनाथ ने हमें बताया कि उन्हें उस गली तक में जाने में डर लगता है, जहाँ उन्हें किसी कुत्ते के होने का शक

होता है। और बंदूक"—वह बोला—"उन्होंने मेरी शादी तक में बंदूक छुड़वाने की सख्त मनाही कर दी है।"

बारात में कई दिन हंसी खुशी में बीते और मैं उन सभी दिनों की घटनायें आप को बताना चाहता था। लेकिन मैं आपसे सच कहता हूँ कि इस समय मुझे सिर्फ इतना ही याद है कि यद्यपि बारात लखनऊ में पूरे तीन दिन ठहरी, और ये तीनों दिन अच्छे भी गुजरे, लेकिन मुझे इस समय सिवाय इसके कुछ भी याद नहीं आ रहा है कि मैं इन तीनों दिनों तक बारात में अपने हृदय के एक कोने में उस मीठी, लेकिन तीव्र पीड़ा का अनुभव करता रहा, जो पहले भी एक बार उठ चुकी थी। और इसके बाद मैं बराबर इलाहाबाद वापस आने के ही स्वप्न देखता रहा।

मैं इस समय होटल में अपने कमरे मैं बैठा हूँ। सबेरे के नौ बज चुके हैं। मेरी तबियत कुछ उचटी-उचटी सी है। आज सबेरे से ही मैं कुछ उदासी के मूड में हूँ। मैं बाहर देख रहा हूँ। अब कुछ कोहरा कम होने लगा है और पहाड़ की चोटियों पर धूप चमकने लगी है।

मैं अपने कमरे की एक एक चीज पर निगाह डालता हूँ। कमरे में एकदम शांति का वातावरण है। रेडियो की हलकी, मधुर संगीत लहरियाँ गूँज रही हैं। रेडियो पर एक पंजाबी गाना हो रहा है। मैं पंजाबी काफी समझता हूँ और उसका अर्थ सहज ही में निकाल लेता हूँ। उसमें प्रेमिका अपने प्रेमी को संबोधित करके कह रही है कि मुझे इस प्रकार अकेला छोड़कर मत जाओ। मेरा कोमल हृदय इस कठोर आघात को नहीं सहन कर सकेगा और टूट जायगा। मैं तुम्हारी सेविका हूँ।

गाना खत्म होता है। खबरें होने से पहले एक बार रेडियो सूचना दता है, जिससे मालूम होता है कि वह दिल्ली रेडियो था। समाचार होने लगते हैं और मैं रेडियो पर से निगाह हटा लेता हूँ।

उसके बगल में आदमकद शीशे के दरवाजे वाली बड़ी सी कपड़ों की अलमारी है। उसी से लगा हुआ कमरे के कोने में दो तरफ से दीवालों से लगा हुआ एक स्प्रिगदार बेड है, जिस पर एक कवर पड़ा हुआ है। उसी से सटी हुई एक छोटी मेज पड़ी हुई है, जिस पर गहरे नीले रंग का धारियों-वाला मेजपोश पड़ा हुआ है। उस पर हल्के हरे रंग के बल्व सहित एक लैंप रखा है। उसी के पास एक बहुत छोटी सी टाइमपीस रखी है। एक किनारे पर ऐश ट्रे, सिगरेट का डिब्बा और लाइटर रखा है। लैंप के पीछे डाइरक्टरी पर टेलीफोन रखा हुआ है।

दूसरी ओर कमरे की दीवाल से लगी एक और अलमारी है। उसी से

लगा हुआ ही एक दरवाजा है, जिसके पीछे बाथरूम है । दरवाजे के बगल में ड्रेसिंग टेबिल है । उस पर दो तीन ब्रश बाल झाड़ने और कंघा साफ करने के लिये रखे हैं। एक शीशे के फ्रेम में रीता की फोटो लगी रखी है । दो तीन तेल और सेंट की शीशियाँ, पाउडर का डिब्बा और एक प्राइज़ कप भी वहीं रखा हुआ है ।

एक किनारे पर पढ़ने लिखने की एक छोटी सी मेज रखी है और उसी के साथ लगी हुई एक लोहे वाली छोटी कुर्सी मेज पर बाईं ओर एक छोटा टाइपराइटर रखा हुआ है। एक डायरी-कैलेंडर, एक बड़े साइज वाली डायरी, ऊनी दस्ताने, कुछ पत्र, फाउंटेनपेन वाली रोशनाई की दावात, ऐनक का केस, धूप वाली काले शीशे की ऐनक, ताली का गुच्छा और ब्लाटिंग पैड भी उस पर यथास्थान रखे हैं । कमरे के बीचोबीच एक गोल छोटी मेज पड़ी है, जिस पर एक बड़ी सी प्लेट में कुछ संतरे और केले रखे हुये हैं । फर्श पर एक हैंडबेग पड़ा हुआ है । हीटर जल रहा है और कमरा गर्म है ।

मेरी तबियत में एकाएक फिर बेचैनी सी होने लगती है । कमरे के वातावरण में मुझे ऐसा मालूम होता है, मानों मेरा दम घुटा जा रहा हो । मैं बाहर बरामदे में आ जाता हूँ और आराम कुर्सी पर बैठ जाता हूँ ।

यहाँ से मुझे झील का सारा दृश्य दिखाई दे रहा है । अब सबेरे के नौ बज चुके हैं । ठंड से सिकुड़ते हुए लोगों में चारों ओर अच्छी तरह फैल चुकी धूप ताजगी पैदा कर रही है । झील में लोग नौका विहार कर रहे हैं । मेरे सामने कई नावें आ जा रही हैं, जिनमें से दो पाल से चलने वाली हैं । इन नावों पर सभी तरह के लोग बैठे हुये हैं । एक नाव पर एक युवक और एक युवती भड़कीले कपड़े पहने बैठे हैं । दोनों ही नाव चला रहे हैं और काफी खुश नजर आते हैं । एक दूसरी नाव पर अधेड़ आयु की तीन स्त्रियाँ बैठी हैं । उनमें से जो जरा कम उम्र की है, वह नाव खे रही है, तीनों बातें कर रही हैं और कभी कभी हाथ उठा कर इधर - उधर पहाड़ों की तरफ कुछ इशारे भी करती हैं । तीसरी

नाव पर एक बूढ़े से सूट-टोप धारी सज्जन बठे हैं। वह अपने लंबे सिगार को मुँह में लगाये हैं और बराबर धुआँ उड़ा रहे हैं। नाव वाला उन्हें झील की सैर करा रहा है। चौथी नाव पर दो युवक बैठे हैं और काफी तेजी से नाव खे रहे तथा अन्य नावों पर बैठे लोगों की तरफ कुछ गर्व से देख रहे हैं। पाल से चलने वाली दो नावें भी झील में इधर से उधर आती-जाती हैं। उनकी रफ्तार साधारण नावों से तेज है।

झील के किनारे बनी पतली लंबी सड़क पर कुछ लोग घोड़े की सवारी का आनंद ले रहे हैं। इनमें बच्चे, बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी शामिल हैं। झील के बगल में नुमाइश लगी हुई है—बड़े मैदान में। लेकिन इस वक्त वहाँ कोई आकर्षण नहीं है। वहाँ लगे हुये सैकड़ों बिजली के लाल-हरे, पीले-नीले बल्ब धूप में चमक रहे हैं। इधर-उधर सिनेमा के पोस्टर भी लगे हुये हैं।

लेकिन मेरी तबियत इस सबमें नहीं लगती। मेरा मन ऊबने लगता है, साथ ही मेरी उद्विग्नता भी बढ़ती जाती है। मुझे कुछ बीती हुई बातें याद आने लगती हैं। एक ऐसा ही सबेरा था, जब·····।

० ० ० ०

उस दिन सबेरे मैं जरा देर से सोकर उठा था। हाथ मुँह धोकर चाय पीने के बाद छत पर टहल रहा था। थोड़ी-थोड़ी देर बाद रीता के घर की तरफ भी देख लेता था। दस-पंद्रह मिनट बाद रीता कुछ इठलाती हुई सी ऊपर आई। आज वह बहुत खुश दिखाई दे रही थी। मुझे कुछ कौतूहल हुआ। मैंने देखा, वह स्वयं ही धीरे-धीरे चलती हुई मेरे पास चली आई। बोली—"आज घर में कोई नहीं है।"

"क्यों ? सब लोग कहाँ गये ?"—मैंने उसका हाथ अपने हाथ लेते हुये पूछा।

"एक रिश्तेदार के यहाँ गये हैं।"

"कब तक आयेंगे ?"

"शाम तक।"

"तुम बिल्कुल अकेली हो ?"

"मुन्नू अभी थोड़ी देर में स्कूल चला जायगा।"

"अच्छा।" मैंने धीरे से कहा और उसके चेहरे की तरफ ताकने लगा।

"अभी आती हूँ।" मुन्नू को खाना खिला दूँ।"—कह कर वह धीरे से अपना हाथ छुड़ा कर चली गई।

मैं कुछ सोचता हुआ अपने कमरे में वापस आ गया। उसी समय माँ ने आवाज दी कि नहा कर खाना खा लो। मैंने तौलिया और साबुन उठाया और नीचे चला गया।

जल्दी से नहा-धोकर मैंने खाना खाया और फिर कपड़े पहन कर किताबें उठाई। फिर यूनिवर्सिटी जाने को तैयार हो गया। चलने के पहले एक बार सामने निगाह डाली—रीता छत पर खड़ी थी। मैं उसे देखकर एक बार धीरे से मुस्कुराया और फिर नीचे उतरकर बाहर गली में आ गया।

मैंने देखा, अब तक रीता भी नीचे आ गई थी और बाहर के कमरे का दरवाजा आधा खोले हुये खड़ी थी। मैं गली में किसी को न देख, कुछ देर के लिये उसके पास खड़ा हो गया। उसने धीरे से कहा—"मुन्नू स्कूल गया।"

"घर में कोई नहीं है ?"—मैंने जानते हुये भी पूछा।

"नहीं।"—वह धीरे से बोली।

मेरी छाती धड़कने लगी। मैंने एक बार इधर-उधर देखा फिर उसके कमरे में चला गया। दरवाज़ा धीरे से बन्द करके बिना जरा भी आवाज किये हुये सिटकनी चढ़ा दी।

मैंने देखा रीता मुझसे कुछ फासले पर हट कर चुप खड़ी थी। मैंने एक बार उसे फिर निगाह भर कर देखने की कोशिश की। उसने भी मेरी तरफ भरी हुई आँखों से देखा। मुझ पर एक अजीब तरह का नशा सा छाने लगा। मैं काँपता हुआ आगे बढ़ा और उसकी कमर में हाथ डाल कर उसे अपनी ओर खींचा। वह ढीली-ढीली सी मेरी कसी बाँहों में आ गई मैंने उसका कोमल, गोरा हाथ अपने हाथ में ले लिया। वह मेरे कंधे पर शिथिल होकर टिक गई।

यों तो हम लोगों को अब तक कई ऐसे अवसरों से गुजरना पड़ा था, जब हम परस्पर इतने निकट रहे थे, लेकिन उस दिन जैसा रोमांच मुझे—और शायद रीता को भी—कभी नहीं हुआ था। मैं उसकी अलसाई, फैली आँखों देख रहा था और उनकी गहराइयों में डूबा जारहा था। मेरे होश धीरे-धीरे खोते जा रहे थे। मैं उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में झाँककर देखने की कोशिश कर रहा था। कुछ खोज रहा था। उनमें क्या था ? प्रेम ? वासना ? या... नहीं कुछ नहीं। मुझे उनमें कुछ नहीं दिखाई दे रहा था, शायद मैं ही कुछ नहीं देख पा रहा था, अंधा हो गया था।

हम दोनों ही यह महसूस कर रहे कि हमारे हृदय बहुत तेजी से धड़क रहे हैं। मेरे कंधे पर रखा हुआ उसका हाथ थरथरा रहा था। मैंने उसे अपने हाथ में ले लिया। मैंने देखा, वह अचेत सी होती जा रही थी। मैंने यह भी महसूस किया कि उसने अपनी ढीली बाँहें मेरे गले में डाल दीं और गिरने को हुई। मैंने अपने दोनों हाथों से उसे कमर से पकड़ कर रोक लिया और प्रगाढ़ आलिंगन में ले लिया। उसकी बाँहों की शिथिलता कम होने लगी और मैंने उनकी कसावट का अनुभव किया।

मैंने अपने कंधे पर टिका हुआ उसका मुँह, ठोढ़ी को उँगली से उठा कर अपने सामने किया। उसकी अधखुली नशीली आँखें, उसकी गर्म-गर्म साँसें उसके फड़कते हुये ओठ, उनसे निकलती हुई आग। मेरी चेतना लुप्त होती जा रही थी। मैं उसके मुँह पर झुकता जा रहा था। वह कोई प्रतिरोध नहीं कर रही थी। मैं पागलों की तरह उसका माथा, उसका गला, उसके ओठ, उसके गाल चूमता जा रहा था।

थोड़ी देर हम लोग वैसे ही खड़े रहे। फिर वह धीरे से अपने आपको अलग करती हुई हट गई। मुझे कुछ प्यास सी मालूम हो रही थी। मैंने उससे एक गिलास में पानी माँगा। वह धीरे-धीरे चलती हुई कमरे से बाहर चली गई। मैं वहीं पड़ी हुई एक कुर्सी पर बैठ गया।

वह जल्दी ही एक गिलास में पानी लेकर वापस आ गई। मैं एक ही

साँस में सब पानी पी गया और खाली गिलास जमीन पर किनारे से रख दिया।

"और लीजियेगा ?"

"बस।"

वह अपने मुँह पर मुस्कुराहट लाने की कोशिश कर रही थी, लेकिन ऐसा कर नहीं सकी। मैंने देखा, वह मेरी कुर्सी के पीछे आकर खड़ी हो गई और हौले-हौले अपनी नरम हथेलियों से मेरा माथा सहलाने लगी और अपनी लंबी, पतली उँगलियों से मेरे बालों से खेलने लगी। मुझे अब यह महसूस हुआ कि मेरे सिर में उस समय थोड़ी पीड़ा हो रही थी।

मैं धीरे से कुर्सी से उठा और कमरे में एक किनारे पर बिछे हुये गुदगुदे पलंग पर आकर धीरे से लेट गया। वह मेरे सिरहाने आकर बैठ गई और धीरे-धीरे मेरा सिर दबाने लगी।

मेरे हृदय में, जो अभी तक प्रेम की पवित्रता से जगमगा रहा था, अब वासना जाग उठी और उसके कारण भयानक उथल-पुथल मचने लगी। रीता मेरे सिरहाने निष्कपट भाव से बैठी थी। उसका ठंढा कर-स्पर्श, जो अभी मुझे शीतलता और शांति प्रदान कर रहा था, अब मुझे बुरी तरह उत्तेजित कर रहा था। मैं तीव्रता से यह अनुभव कर रहा था कि मेरे हृदय की पाशविक वृत्तियाँ जाग उठी हैं और अपनी तृप्ति के लिए मुझे इस बात पर मजबूर कर रही हैं कि मैं अपनी पूरी हैवानियत से पागल हो जाऊँ। मेरा विश्वास स्वयं अपने आप पर से खोता जा रहा था। उसके कोमल, कांतिपूर्ण अंग, जिन्हें मैं अब तक सहेज कर अपने हृदय में रख लेना चाहता था, अब मुझे इस बात के लिए विवश कर रहे थे कि मैं उन्हें अपनी कामवासना का शिकार बनाऊँ, उन्हें मसल डालूँ।

मेरी साँस जोर-जोर से चलने लगी। मैंने देखा—वह अब भी पूर्ववत् स्नेह से अपनी मुलायम उँगलियाँ मेरे बालों में उलझाती जा रही थी। मैंने उसके चेहरे पर निगाह डाली। वह पवित्र सौंदर्य की चमक से उज्ज्वल

था। नहीं, नहीं। एक बार मेरी चेतना जैसे लौटने को हुई, लेकिन दूसरे ही क्षण मैंने पागलों की तरह उसे अपनी गोद में खींच लिया।

० ० ० ० ०

हम दोनों बुरी तरह काँप रहे थे। रीता का चेहरा पीला पड़ गया था। वह भयानक रूप से डरी हुई मालूम होती थी और जोर-जोर से सिसकियाँ भर रही थी। वह अपने होश खोती जा रही थी। मैं स्वयं बहुत घबड़ाया हुआ था और समझ नहीं पा रहा था कि क्या करना चाहिये।

"रीता, रीता, ईश्वर के लिये चुप हो जाओ।"—मैंने उसे सांत्वना देते हुये कहा और उसे अपनी बाँहों में सम्हाल कर धीरे-धीरे उसकी पीठ सहलाने लगा।

"प्रियतम।"—उसने काँपती हुई और भरभराई आवाज में कहा—"यह आज क्या..."।

वह बड़ी चेष्टा करने पर आगे कुछ न बोल सकी और मेरी छाती में भी सिर छिपाते हुये फफक-फफक कर रो पड़ी।

मेरे लिये यह सब बिल्कुल अप्रत्याशित था। मैंने धीरे से उसका सिर उठाया और अपना मुँह उसके फड़फड़ाते गरम ओठों पर रख दिया।

"रीता।"—मैंने फुसफुसाते हुये कहा।

उत्तर में उसने अपनी आँखें उठाई और मेरी तरफ भाव से ताकने लगी।

मैंने देखा, उसकी आँखों में अब भी आँसू भरे हुये थे और वे कुछ सूज भी आई थीं।

ओह, कैसी थी उसकी वह दृष्टि। आज भी जब मैं उसकी कल्पना करता हूँ, सिहर उठता हूँ। मेरे सामने उसकी वही करुणापूर्ण मूर्ति आ जाती है और वह भीगी पलकों से मुझे अपनी ओर निहारती दिखाई पड़ती है। मैं कभी-कभी उसकी उस दृष्टि में आने वाले भयानक दुर्भाग्यपूर्ण दिनों का संकेत भी पाता हूँ।

उस दिन के बाद से जैसे हम लोगों का संसार ही बदल गया। हम दोनों एक दूसरे से दूर-दूर, कटे-कटे से रहने लगे। वह अब बहुत कम सामने आती। बातचीत तो दूर, हफ्तों मैं उसकी सूरत तक न देख पाता, अगर कभी वह मेरे सामने पड़ भीजाती, तो किसी बहाने से नीचे चली जाती,कतरा कर सामने से हट जाती। लेकिन मैं इतनी ही देर में देख लेता, कि उसकी आँखें भीगी-भीगी सी हैं। वह किसी अज्ञात भय की कल्पना से सहमी हुई है।

मुझे यह सब देख कर बड़ी परेशानी होती। मैं चाहता था कि किसी प्रकार एक मिनट के लिये अवसर मिले, तो उसे सांत्वना दूँ और यह कहूँ कि वह किसी बात के लिये घबड़ाये नहीं। सारी जिम्मेदारी मेरी है और मैं उससे बचना भी नहीं चाहता हूँ। उसे किसी भी कारण से लज्जित नहीं होना पड़ेगा, किसी भी बात के लिये लांछन नहीं सहना पड़ेगा। लेकिन कभी ऐसा अवसर न मिला, जो उससे कुछ कह सकता, उसका दर्द हल्का कर सकता।

काफी दिन बाद एक बार शाम के समय मैं ऊपर छत पर टहल रहा था। रीता अपनी छत पर खड़ी हुई थी और मुन्नू उसका हाथ पकड़े हुये था। मैं यह देख झपट कर कमरे में आया और उस पत्र में लिखा कि वह क्यों मुझसे वह सब कुछ नहीं बता देती, जिसकी वजह से वह अब मुझसे इतनी दूर-दूर रहने लगी है। वह नहीं समझ सकेगी कि मेरे दिन और रात किस तरह से चिंता और आशंका में बीतते हैं। मैंने उसे बार-बार आश्वासन दिया है कि वह किसी बात के लिये कतई चिंता न करे, क्योंकि अगर कुछ भी गलत हुआ है, तो उसमें सारा दोष मेरा है और मैं उसे स्वीकार करने को हर समय तैयार हूँ। साथ ही मैं अपनी जिम्मेदारी भी खूब अच्छी तरह

समझता हूँ। अगर कभी कोई अवसर पड़े, तो मै उसे जरा भी दोष न लगने दूँगा, सारा पाप अपने ऊपर ओढ़ लूँगा। अंत में, मैंने लिखा था, कि इन सारी बातों के बावजूद, कम से कम, वह मुझसे घृणा न करे और सारी बातें साफ-साफ बता दे। शायद मैं उसकी परेशानी दूर करने में कुछ सहायता कर सकूँ। और अगर वह ऐसा न करेगी, तो मैं कभी भावावेग में अपना भला-बुरा करने में भी नहीं चूकूँगा।

पत्र लिख कर मैं बाहर छत पर आया। देखा, अब भी रीता मुन्नू के साथ वैसे ही चुपचाप खड़ी हुई थी। मैंने हाथ के इशारे से मुन्नू को बुलाया और चिट्ठी देकर कहा— "यह कागज अपनी रीता जीजी को दे दो।"

उसने वैसा ही किया। मैंने देखा कि खत लेकर वह कमरे के अन्दर चली गई और अपने आँचल में उसे छिपा कर पढ़ने लगी।

मैं प्रतीक्षा में खड़ा रहा। दो तीन मिनट बाद वह कमरे के बाहर निकली और करुण दृष्टि से मेरी तरफ ताकने लगी। मैंने उससे इशारे से फिर पूछना चाहा। लेकिन अब तक शायद उसके धैर्य का बाँध टूट चुका था। मैंने साफ देखा, उसकी आँखों में जैसे आँसुओं की बाढ़ सी आ गई। वह धोती के पल्ले में मुँह छिपा कर नीचे भाग गई।

मैं अवाक खड़ा देखता रह गया।

० ० ० ०

मेरे दिन भीषण पश्चाताप की अवस्था में बीत रहे थे। हर समय मै चिंता से व्याकुल रहता था। रीता का करुणापूर्ण मुख देख कर मेरे सीने में सुइयाँ काटने लगती थीं। मुझे निश्चित कुछ नहीं मालूम हुआ था, लेकिन मैंने अब तक उसकी स्थिति का कुछ-कुछ अनुमान लगा लिया था। मैं उसके संपूर्ण दुर्भाग्य के लिये अपने आपको जिम्मेदार समझता था और हमेशा यही सोचा करता था कि मैं कौन सा ऐसा काम कर डाल सकता हूँ, जिससे रीता का पीछा, उसकी विपत्ति से छुड़ा सकूँ।

मेरा यह अनुमान अब धीरे-धीरे पक्का होता जाता था कि रीता के घर वालों को सब कुछ मालूम हो गया है। क्योंकि एक दिन मुझे उड़ती-उड़ती

यह खबर मिली थी कि उसके माँ-बाप उसके विवाह के संबन्ध में बहुत शीघ्रता कर रहे हैं। अब तक शायद लड़का वगैरह भी देख लिया गया था और विवाह का मुहूर्त भी पक्का हो चुका था। मैं रोज देखता था कि उसके घर में हलचल बढ़ती जा रही थी, जैसी कि शादी-ब्याह वाले घरों में हुआ करती है। लेकिन मैं और किसी भी बात से अनभिज्ञ था और किसी से कुछ भी न पूछ सकता था।

एक बार खाना खाते समय मैंने दबी जबान से माँ से रीता के विवाह की चर्चा की थी। उन्होंने मुझ पर कोई शक तो नहीं किया था, लेकिन मैंने स्पष्ट देखा था कि उसके विवाह के सम्बन्ध में पूछने पर उन्होंने एक बार कठोर दृष्टि से मेरी ओर देखा था और फिर क्रोध में बड़बड़ाने लगी थीं। उनकी बातों से मैं जान गया था कि वह रीता को पतित लड़की समझती थीं।

खाना खाते-खाते एकाएक मेरे हाथ रुक गये थे। मेरे हृदय में भीषण अंतर्द्वंद्व मचने लगा था। मेरी माँ को क्या मालूम था कि रीता के समस्त पाप चरित्र का कारण मैं ही था। उनका लाड़ला, दुलारा और भोला बेटा। वह अपनी दृष्टि में मुझे बहुत ही निष्कलंक समझती थीं, और मैं कितना पापी था !

फिर भी, रीता के सम्बन्ध में ऐसी बातें सुनकर मेरा खून जमने लगा। मैंने एक बार सोचा कि माँ के पैरों पर गिरकर क्षमा माँगते हुए उन्हें सारी बातें बता दूँ और उनसे यह प्रार्थना करूँ कि किसी प्रकार रीता का उद्धार करो। लेकिन यह सब मैं मन में ही सोच कर रह गया।

मैं उदास सा खाना छोड़ कर उठ खड़ा हुआ। मेरी माँ कुछ भी न समझ पाईं। बल्कि उन्होंने इस सबका कुछ और ही अर्थ लगाया। यह मुझे दूसरे दिन मालूम हुआ जब मैंने देखा कि वह मेरी शादी की बातचीत काफी तेजी से चला रही हैं। और यह देखते ही मैंने उनसे स्पष्ट कह दिया कि अभी मुझे विवाह नहीं करना है।

"क्यों ?" — उन्होंने कुछ क्रोध और आश्चर्य से पूछा था।

पहले मैं एम० एस-सी० पास कर लेना चाहता हूँ" — हृदय में उठते हुये अनेक भावों को दबा कर मैंने काफी धैर्यपूर्वक उनसे कह दिया था।

० ० ० ०

और अंत में वही होकर रहा, जो होना था।

यानी, रीता के विवाह की तिथि आ गई और वह ससुराल चली गई। अपने हृदय की समस्त भावनाओं को दबाये हुये मैं भी उसके विवाह में सम्मिलित हुआ या सम्मिलित होने को विवश हुआ। आप सच मानिये उन दो-तीन दिनों में बीती हुई एक-एक घटना अब भी मेरी आँखों के सामने स्पष्ट है। जब गली में शहनाई बज उठती थी, तो मेरे सीने पर जैसे कोई हथौड़े चलाने लगता था।

विवाह की एक-एक विधि संपन्न हुई। रीता हाथ-पैरों में मेंहदी लगाये, बहू की तरह एक विशेष प्रकार की चोटी गूँथे हुये, हाथों में सुहाग की लाल, मोटी चूड़ियाँ पहने, पीली साटन का लहँगा और गुलाबी चुँदरी ओढ़े हुये, लम्बा सा घूँघट काढ़े दूल्हन बनी हुई, आठ-आठ आँसू रोती और पछाड़ें खाती हुई बिदा हुई। उस वक्त मेरे दिल पर क्या गुजरी यह बताना कठिन है। उस समय मेरा कलेजा एक अजीब सी दहशत से दहल सा रहा था। मैं ईश्वर से अपने सभी पापों की क्षमा माँगते हुए उसकी मंगल-कामना कर रहा था। इसका कारण यह था कि मुझे ऐसी आशंका बराबर होती रही थी, कि उसके वैवाहिक जीवन में कोई बड़ी दुर्घटना घटेगी।

विदाई के समय मैं भी उसे स्टेशन पहुँचाने गया था। बहुत चाहने पर भी उससे दो बातें करने का अवसर न मिला था, इसलिए मन बहुत भारी था। मैं अपने मन में एक तूफान सा दबाये हुये था। वह चुपचाप गाडी में एक कोने में मुँह किये हुये बैठी थी।

अंत में, जब ट्रेन छूटी, तो मैंने अपना हाथ हिलाया। और इस प्रकार

उससे अंतिम विदा ली। क्योंकि अब मुझे भविष्य में उसे देख सकने की आशा नहीं रह गई थी।

और, उत्तर में, मैंने देखा, रीता की आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े।

गाड़ी की रफ्तार अब तक तेज हो चुकी थी।

रीता के विवाह के लगभग छै महीने बाद मुझ अपनी एक मौसेरी बहिन का एक पत्र मिला, जो दिल्ली में ही रहती थीं और रीता के पति से उनका कोई दूर का रिश्ता भी निकलता था। रीता भी दिल्ली में ही ब्याही थी। वह पत्र यों है—

प्रिय रमेश,

आज से छै महीने पहिले जब रीता यहाँ ब्याह कर आयी थी, तब मैंने स्वप्न में भी यह न सोचा था कि उसका तुमसे कोई परिचय या सम्बन्ध रहा होगा। उस समय वह एक भोली-भाली, नासमझ और अल्हड़ लड़की थी—कम से कम मैंने उसे ऐसा ही समझ रखा था।

योगेन्द्र (रीता का पति) मेरी निगाह में कोई बहुत चरित्रवान युवक नहीं कहा जा सकता, लेकिन कम से कम, चरित्रहीन भी नहीं। और, विशेष रूप से मुझसे तो बहुत ही आदर और शिष्टता का व्यवहार करता है। वह मेरी माँ का कोई सम्बन्धी लगता है और मुझे हमेशा बहिन जी पुकारता है। इसीलिए जब रीता यहाँ ब्याह कर आई, तक मैं भी उसे देखने गई। उसका स्वभाव मुझे बहुत पसन्द आया और वह स्वयं भी मेरे निकट आने में प्रसन्नता का अनुभव करती रही। अतः हम दोनों धीरे-धीरे आपस में काफी खुल गईं।

इलाहाबाद की चर्चा चलने पर कभी-कभी तुम्हारा नाम आता था, तो रीता एकाएक कुछ सकपका सी जाती थी। एक-दो बार तो में कुछ न समझ सकी, लेकिन जब कई बार मैंने वैसा ही पाया, तो मुझे कुछ सन्देह होने लगा। वह तुम्हारा नाम सुनते ही पीली पड़ जाती थी, काँपने

सी लगती थी, उसकी आवाज भारी होने लगती थी और कभी-कभी तो उसका चेहरा सफेद पड़ जाता था और वह विस्फरित नेत्रों से मेरी ओर ताकने लगती थी, मानों मैं उसका कोई बहुत गुप्त भेद जान गई होऊँ।

कुछ दिन तक तो मैं यों ही टालती रही, लेकिन एक बार जब मैं दोपहर के समय उसके यहाँ गई हुई थी, तब मैंने अकेले में उससे तुम्हारे बारे में साफ-साफ पूछना चाहा।

मैंने देखा कि मेरी बात सुनते ही उसका मुँह फ़क हो गया। वह भयभीत होकर इधर-उधर ताकने लगी और फिर एकाएक मेरे गले से लिपट गई। मैंने उसका यह विचित्र व्यवहार देख, उसे समझाना चाहा, तो वह हिचक-हिचक कर रोने लगी।

इधर कुछ दिनों से मैं रीता के घर में कुछ अजीब सा स्तब्धता का वातावरण देख रही थी। उस समय योगेन्द्र दफ्तर गया हुआ था और रीता की सास भी किसी रिश्तेदार के यहाँ गई थी। मैंने प्यार से रीता के सिर पर हाथ फेरते हुये पूछा—"यह क्या रीता? आजकल तुम्हें यह क्या होता जा रहा है?"

"आजकल मेरी तबियत बहुत घबड़ाया करती है।" रीता ने सिसकते हुये वैसे ही मेरे गले से लगे-लगे कहा।

मैं इधर साफ देख रही थी कि रीता का पाँव भारी है और ऐसी हालत में उसे अधिक आराम करने की जरूरत है। लेकिन घर में उसके दैनिक कार्यक्रम में कोई अन्तर आया न मालूम पड़ता था। एक बार मैंने वैसे ही इशारे से उसकी सास से भी यह कहा था कि रीता को अब भारी चीजें नहीं उठानी चाहिये और जरा होशियारी से रहना चाहिये, लेकिन उन्होंने मेरी बात उपेक्षा से सुनी-अनसुनी कर दी थी। मुझे उस समय बड़ा ताज्जुब हुआ था कि कोई सास अपने एकमात्र पुत्र की वधू के प्रथम बार गर्भ धारण करने पर भी ऐसी उदासीनता कैसे दिखा सकती है और उससे इतनी मेहनत करवा सकती है। लेकिन मैं चुप रह गई थी।

इसके कुछ दिन बाद भी मैं एक बार रीता के घर गई थी। उस समय योगेन्द्र थोड़ी ही देर हुये दफ्तर जा चुका था और उसकी सास नीचे चौके में खाना खा रही थी। मैं सीधी ऊपर जाकर रीता के कमरे में घुस गई और अन्दर रीता की हालत देखकर चौंक कर रह गई। कमरे में रीता जमीन पर बैठी हुई थी और पलंग पर अपना सिर अपनी बाहों में छिपाये हुये टिकाये थी। उसकी साड़ी अस्त-व्यस्त थी और पीठ पर ब्लाउज के नीचे और बाँहों के ऊपर कुछ सूजन सी थी, जैसे किसी ने पीटा हो।

मैं यह देख कर अवाक रह गई। मेरे पैरों की आहट पाकर रीता ने अपना आँसुओं से भीगा हुआ मुँह उठाया और रोती हुई मेरे गले से लिपट गई। मैंने अपनी सारी ताकत से अपने कलेजे से चिपका लिया, जैसे कोई अपनी संतान को चिपका लेता है।

मुझे उसकी वैसी हालत देखकर बहुत क्रोध आया था। क्या योगेन्द्र इतना नीच हो सकता है, जो रीता जैसी सुशीला पत्नी पर हाथ उठाये? और क्या उसकी सास इतनी कठोर और हृदयहीन हो सकती है, जो अपनी गर्भवती पुत्रवधू पर इतना अत्याचार होते देख कर भी चुप रहे?

जरा देर के लिये मैं जैसे पत्थर की तरह खड़ी रह गई। बाद में मैंने रीता को समझाया बुझाया था और उसके अंगों को धीरे-धीरे सहलाने लगी थी।

उस दिन रीता ने मेरे बहुत आश्वासन दिलाने पर, मुझ पर विश्वास करके मुझे बीती हुई कुछ बातें और तुम्हारे संबंध में अपनी भावनायें बताई थीं। क्षण भर को तो मैं यह सब सुनकर सन्न सी रह गई थी लेकिन बाद बाद में मैंने मन ही मन अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया था।

रीता ने मुझे यह भी बतलाया था कि योगेन्द्र उसे पतिता समझता है और उसे निर्दयता से मारा-पीटा करता है। उसकी सास का व्यवहार भी उसके पति से भिन्न नहीं है।

रमेश, मैं रीता को अपनी छोटी बहिन की तरह मानती हूँ। मैं तुमसे सच कहती हूँ कि अगर मैं अपना कलेजा चीर कर तुम्हें दिखा सकती तो तुम देखते कि मैं उसे कितना चाहती हूँ। सच पूछो, तो मैं उसका दुःख जरा भी नहीं देख सकती और उसे इस नर्क से छुटकारा दिलाने के लिये कुछ भी करने को तैयार हूँ।

मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि इस समय क्या करूँ। लेकिन मैंने यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि अवसर पड़ने पर मैं कुछ भी करने को तैयार हो जाऊँगी। मैं एक दिन अवसर मिलने पर योगेन्द्र से रीता के संबंध में बात चीत करूँगी। और उसे हिदायत दूँगी कि भविष्य में वह उसके साथ ऐसा व्यवहार न करे। क्योंकि मेरा विश्वास है कि वह मेरा काफी आदर करता है और मेरी बात पर अवश्य ध्यान देगा। लेकिन, अगर उसने ऐसा न किया और रीता पर फिर भी इसी प्रकार अत्याचार करता रहा, तो मैं उसे अवश्य ही अपने घर ले आऊँगी।

तुम्हें यह पत्र मैं रीता की इच्छा के विरुद्ध लिख रही हूँ, क्योंकि वह नहीं चाहती कि उसके दुर्भाग्य की छाया तुम तक पहुँचे और तुम्हें व्यर्थ ही पीड़ा पहुँचाये, लेकिन मैं इस समय स्थिति की गंभीरता भली भाँति समझ रही हूँ। मैं ठीक नहीं कह सकती, लेकिन मुझे ऐसी खबर मिली है कि वे लोग रीता को तलाक दे देने तक के विषय पर विचार कर रहे हैं। ईश्वर न करे, ऐसा हो, लेकिन अगर ऐसा हुआ, तो रीता मेरे घर आ जायेगी। और तुम्हें उसका हाथ पकड़ना पड़ेगा। क्या तुम स्वयं भी यह नहीं चाहते हो और ऐसा होने में प्रसन्न नहीं होगे ? मेरा विचार है कि तुम्हारे लिये पश्चाताप और आत्मग्लानि से बचने के लिये इससे बढ़ कर और कोई बात नहीं हो सकती।

अंत में, मैं तुम्हें यह स्पष्ट बता देना चाहती हूँ कि यह बहुत संभव है कि मैं रीता को बहुत जल्दी ही अपने यहाँ ले आऊँ, क्योंकि उस घर में अब उसका अधिक दिन रह सकना मुश्किल जान पड़ता है। और वैसी हालत

में किसी भी समय तुम्हारी आवश्यकता पड़ सकती है। अतः तुम मेरे अगले पत्र की प्रतीक्षा करना और मेरे बुलाने पर फौरन यहाँ आ जाना।

आशा है, स्वस्थ हो।

तुम्हारी बहिन

शारदा

इस पत्र के मिलने के लगभग पंद्रह ही दिन बाद शारदा जीजी का दूसरा पत्र मुझे मिला। वह पत्र इस प्रकार था—

प्रिय रमेश,

मेरा पिछला पत्र लगभग एक पखवारे पहले मिला होगा। यद्यपि उसमें ऐसी कोई बात नहीं थी, जिसका उत्तर पाने की मैं तुमसे आशा करती, लेकिन फिर भी, रीता के संबंध में ऐसी और इतनी बातें जानकर भी तुम्हारा मौन रह जाना, मुझे आश्चर्यजनक ही लगा, खैर।

तो रमेश, सुनो। जिस बात का मुझे भय था, वही अंत में होकर रही। एक दिन मैं योगेंद्र के घर गई हुई थी। तीसरा पहर था, चार-साढ़े चार का समय था। मैं रीता के साथ ऊपर कमरे में बैठी बातें कर रही थी। इतने में योगेंद्र ने बाहर का दरवाजा खटखटाया। रोज वह दरवाजा बंद रहता था, लेकिन आज चूँकि मैं, थोड़ी ही देर पहले आई थी,तो वह खोला गया था और अब तक खुला ही था। योगेंद्र ने दरवाजे को धक्का देकर खोला नहीं, यों ही काफी देर तक कुंडी बजाता रहा। रीता उठकर नीचे जाने लगी थी, लेकिन मैंने उसका हाथ पकड़ कर रोक लिया। कहा, दरवाजा खुला हुआ तो है ही, आ जायेंगे।

पाँच-सात मिनट तक यों ही खड़े रहने के बाद योगेंद्र ने क्रोध में जोर से दरवाजे को ढकेला और धड़धड़ाता हुआ ऊपर आया। वह नीचे से ही रीता को बहुत अशिष्ट और भद्दी गालियाँ सुनाता आ रहा था। मुझे यह देखकर बहुत बुरा मालुम हुआ। लेकिन मैंने सोचा कि शायद जब वह ऊपर आयगा और मुझे यहाँ बैठे देखेगा तो अपने व्यहार के लिये स्वयं ही लज्जित होगा और माफी माँग लेगा। लेकिन उसने मुझे देखकर भी रीता को गालियाँ

देना बराबर जारी रखा। और यही नहीं, वह एक लंबी बेंत की लकड़ी उठा कर उसे पीटने पर भी तुल गया। बड़ी कठिनाई से मैं उससे उस दिन रीता को बचा पाई।

मैंने इतने दिनों तक, सब कुछ बराबर देखते रहने पर भी, योगेन्द्र या उसकी माँ से रीता के विषय में कोई बात न की थी, यद्यपि मैं हमेशा से यह चाहती रही थी कि एक दिन उन दोनों से स्पष्ट पूछ लिया जाय कि आखिर वे क्यों उसे इतनी यातना दे रहे हैं। परंतु मैं हमेशा यही सोच कर इस अवसर को टालती रही थी कि क्यों मैं ही रीता के दुर्भाग्य का कारण बनूँ।

लेकिन आज योगेन्द्र के व्यवहार को देख कर मेरी आँखें खुल गईं। मुझे अब रीता की दशा सुधारने की कोई आशा नहीं रह गई। सच पूछो, तो, आज का उसका व्यवहार रीता के प्रति इतनी पाशविकता और अमभ्यता का था जिसकी मैं आशा कभी नहीं कर सकती थी।

मैंने कड़े शब्दों में योगेन्द्र से पूछा कि वह मुझे साफ साफ बताये कि वह ऐसे नीच काम करने को कैसे तैयार हो जाता है, जबकि उसकी पत्नी की हालत नाजुक है।

यह सुनते ही उसने घृणा से मुँह बिचका लिया। आँखें तिरछी हो गईं और वह उपेक्षा से बोला—"तुमसे कोई मतलब नहीं।"

"मतलब है।"—मैंने चिल्लाकर कहा और झपट कर उसके सामने आकर खड़ी हो गई। उसे तमाचा मारने को हाथ उठाया लेकिन कुछ सोच कर वैसा नहीं किया।

यह देख वह चुपचाप मेरे सामने से बड़बड़ाता हुआ चला गया। लेकिन उसके बड़बड़ाने का मतलब समझ कर मैं सन्न रह गई। वह रीता को तो पतित समझता ही था साथ ही मेरा भी उसमें कोई हाथ समझता था। और यह भी कि मैं रोज आकर उसे कुछ बहकाना चाहती हूँ।

मैने उस अवसर पर तो कुछ नहीं कहा, लेकिन बाद में एक दिन मैंने उससे और उसकी माँ से साफ साफ बातें कीं। उनसे क्या-क्या बातें मैंने

कहीं और उत्तर में उन दोनों ने किस-किस तरह से रीता को लांछित करते हुए कैसी-कैसी बातें कहीं, यह सब तुम्हें लिखने की आवश्यकता नहीं है। बस, तुम इतना जान लो कि उन्होंने उस दिन मुझसे साफ कह दिया, कि वे रीता के साथ अब कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहते और यही चाहते हैं कि उसके घर से कोई आ जाये और उसे ले जाय।

मैंने यह सुना और उसने कहा—"रीता मेरी छोटी बहन के बराबर है। मैं स्वयं भी यह नहीं चाहती कि वह अब यहाँ एक दिन भी रहे। मैं इसी समय उसे अपने साथ अपने घर ले जाना चाहती हूँ।"

मेरे प्रस्ताव को सुनकर रीता चौंक पड़ी और थर-थर काँपने लगी, लेकिन योगेन्द्र और उसकी माँ को काफी खुशी हुई। रीता आना नहीं चाहती थी, लेकिन मैं उसे काफी समझा बुझा कर घर ले आई हूँ।

रमेश, मैं तुम्हें पहले ही बता चुकी हूँ कि रीता की हालत आजकल कैसी है। मैं फिर तुमसे यह साफ कह देना चाहती हूँ कि रीता ने अब भी मुझे बार-बार यही कहा है कि मैं तुम्हें कुछ भी लिख कर परेशान न करूँ, लेकिन मैं यह अच्छी तरह समझती हूँ कि तुम्हारे प्रति अब भी उसकी भावनाएँ क्या हैं।

तुम मेरे छोटे भाई हो, मैंने अपना कर्तव्य पूरा किया है और अब तुम्हारे लिये अपना कर्तव्य पूरा करने का समय आ गया है।

क्या तुम अब भी इस बात की आवश्यकता समझते हो कि मैं तुम्हें यह भी लिखूँ कि तुम्हें अब क्या करना होगा। मेरा विचार है कि अपना कर्तव्य मुझसे ज्यादा अच्छी तरह समझते होगे। मैं तुमसे आशा करती हूँ कि तुम फिलहाल यह पत्र पाते ही फौरन यहाँ चले आओगे।

बाकी बातें यहाँ आने पर,

तुम्हारी बहिन
शारदा

रीता के दुर्भाग्यपूर्ण भविष्य की तो मुझे पहले से ही आशंका थी, लेकिन वह घड़ी इतनी जल्दी आ जायगी, ऐसी आशा मुझे न थी और विशेष रूप से उस समय, जब कि स्वयं मेरी स्थिति में भी बड़ा परिवर्तन हो चुका था। अब मैं विश्वविद्यालय का एक साधारण छात्र नहीं रह गया था, बल्कि एक ऊँचे पद पर, अच्छे वेतन पर काम कर रहा था और इतना ही नहीं जिन सज्जन की कृपा से मेरा यह कायापलट हुआ था, उनकी सुपुत्री से शीघ्र ही मेरा विवाह भी होने वाला था।

शारदा जीजी के दूसरे पत्र से यह साफ ध्वनि निकलती थी कि मुझे फौरन वहाँ पहुँच जाना चाहिये और रीता से विवाह कर लेना चाहिये। और एक तरह से देखा जाय तो मेरा कर्तव्य भी यही था। साथ ही, मैं अपने इस कर्तव्य को पूरा करने में बहुत प्रसन्न भी होता। लेकिन मेरी जो स्थिति उस समय थी, उसमें मेरे कुछ और भी कर्तव्य थे।

बात वास्तव में यह थी कि प्रारंभ में जब रीता का ब्याह हुआ था और वह यहाँ से चली गई थी, तब मेरे हृदय पर कठोर आघात लगा था। कुछ दिन तक तो मैं एक अजीब सी सूने-पन की स्थिति में जीता रहा था। किसी भी काम में रुचि नहीं होती थी। किसी से बात करने को जी नहीं चाहता था। और मेरी माँ ने मेरी इस उलझन का अर्थ विवाह करने की इच्छा समझ कर वैसा ही करने का प्रयत्न करने लगी थीं। यही कारण है कि जब एक स्थान से विवाह के प्रस्ताव के साथ कुछ और भी आश्वासन आये और पंद्रह दिन के अन्दर ही मुझे साढ़े चार सौ की नौकरी मिल गई, तो माँ ने लड़की देखने के साथ ही विवाह की हामी भर दी और जोर-शोर से तैयारियाँ होने लगीं। मुझको लड़की की फोटो दिखा दी गई थी और

जब मैंने कोई सहमति-असहमति नहीं प्रकट की, तो यह समझ लिया गया कि लड़की मुझे पसंद है।

टीकेवगैरह की विधि जल्दी ही संपन्न हो गई और पन्द्रह दिन बाद मेरा विवाह निश्चित हो गया।

ऐसी परिस्थिति में जब मुझे रीता की इस दशा का पता चला और शारदा जीजी की तरफ से वैसा प्रस्ताव आया, तब मेरा मन कुछ समय के लिये डाँवाडोल हो गया। एक ओर रीता के लिये मेरे हृदय में अथाह प्रेम था और मैं उसके लिये बड़े से बड़ा त्याग करने को तैयार था, यहाँ तक कि अगर मुझे उसके लिये नौकरी भी छोड़ देनी पड़ती तो जरा भी आनाकानी न करता और दूसरी ओर मेरे बूढ़े माँ-बाप की सारी आशाओं पर पानी फेर देने और अपने होने वाले श्वसुर से संबंध बिगड़ जाने और अपनी भावी पत्नी की बदनामी का सवाल था। कम से कम मेरे श्वसुर महोदय तो मेरे विवाह न करने पर मुझे फौरन नौकरी से अलग करवा देते—उसी प्रकार जिस प्रकार उन्होंने मुझे नौकरी दिलवाई थी।

मैं भयानक खींचा-तानी की अवस्था में था और यह सोचने में कतई असमर्थ था कि कौन सा मार्ग अपनाना चाहिये। मेरे सामने दो रास्ते थे—एक तो यह कि जिस तरह से मेरी जिंदगी गुजर रही थी, उसी तरह से उसे गुजरने देता और अपना विवाह करके जीवन भर सुख से रहता। और दूसरा यह कि इलाहाबाद से हमेशा के लिये संबंध तोड़ कर दिल्ली चला जाता और वहाँ रीता को स्वीकार कर समाज से संघर्ष करने को तैयार हो जाता।

मुझे इन दो रास्तों में से एक को चुनना था।

लेकिन मैं कुछ भी न तय कर पाया और धीरे-धीरे एक सप्ताह किसी तरह बीत गया। इस पूरे सप्ताह के दौरान में मैं एक दिन भी नींद-भर सो न सका, खाने-पीने की कौन कहे। हर वक्त एक तरह से झूले में झूलता रहता था। कभी अपने माता पिता के स्नेह का ध्यानआ ता था और

कभी उस रीता का, जिसका जीवन मेरे कारण बरबाद हो चुका था और अब जिसकी एक मात्र आशा मैं था।

यों परिस्थितियों को देखते हुये मैंने अपनी जीवन धारा को उसी तरह बहने देने का विचार कर लिया था, जिस प्रकार वह बह रही थी और एक तरह से रीता का ध्यान अपने मन से हटा देने का निश्चय कर लिया था, यद्यपि ऐसा असंभव ही मालम होता था।

किंतु होना कुछ और ही था।

० ० ० ०

मेरे विवाह के केवल आठ दिन बाकी रह गये थे। अचानक एक दिन मुझे शारदा जीजी का तार मिला कि रीता की दशा बहुत चिंताजनक है, तुरंत चले आओ।

अब तक मैं अपने मन को धोखा दे रहा था और अपने आप को इस भुलावे में रखना चाह रहा था कि मैं रीता को भुला दे सकता हूँ। लेकिन इस तार ने उसे निरा भ्रम सिद्ध कर दिया।

मेरे माँ-बाप क्या सोचेंगे ? मेरे श्वसुर क्या करेंगे ? मेरी नौकरी का क्या होगा ? और उस बेचारी का क्या हाल होगा, जिस अभागिन का विवाह मुझसे होने वाला है ?—इन सब बातों में से किसी पर भी गौर न करते हुये मैं उसी समय पहली गाड़ी से, बिना किसी को कोई खबर दिये हुये, दिल्ली रवाना हो गया।

० ० ० ०

मेरा जितना समय गाड़ी पर बीता, बराबर उतने समय तक मेरी छाती में तेज धड़कनें होती रहीं। मेरा हृदय किसी भयानक अनिष्ट की आशंका से काँप-काँप उठता था। सारी रात मेरी आँख तक नहीं झपकी। मैं जड़वत् बैठा रहा। जिस समय गाड़ी दिल्ली पहुँची, उस समय सबेरे के सात बज रहे थे। मैंने फौरन स्टेशन से बाहर आकर टैक्सी की और सीधा पहाड़गंज चल दिया, जहाँ शारदा जीजी रहती थीं। मैं चूँकि पहले भी एक

बार उनके यहाँ जा चुका था, इसलिये उनके मकान तक पहुँचने में कोई दिक्कत नहीं हुई। टैक्सीवाला मेरे कहने से बहुत तेज चलाकर मुझे ले गया था।

मैं अपने साथ कोई सामान नहीं लाया था, इसलिये लपकता हुआ शारदा जीजी के घर पहुँच गया। दरवाजे पर मुझे एक लेडी डाक्टर बाहर जाता हुई दिखाई दी थी, जो शायद बीमार रीता को देखकर वापस जा रही थी। मेरा कलेजा दहल गया। स्थिर कदमों से मैं घर के अन्दर चला गया। आँगन के बगल वाले कमरे के दरवाजे पर एक नर्स खड़ी थी।

मैं झपट कर कमरे में घुसने लगा। नर्स "सुनिये तो, आप अन्दर··· ।" कहकर मुझे हाथ उठाकर रोकना चाहती थी, लेकिन मैं उसकी जरा भी परवाह किये बिना अंदर चला गया। कमरे के भीतर का दृश्य देखकर मैं क्षण भर को स्तब्ध रह गया।

कमरे में निस्तब्ध सन्नाटा छाया हुआ था। बाहर काफी सबेरा हो जाने पर भी कमरे के अन्दर बिजली का श्वेत प्रकाश फैला हुआ था। सारा कमरा खून से भरा हुआ था। रक्त की नालियाँ बह रही थीं। एक कोने में एक छोटा सा पलंग पड़ा हुआ था। उस पर राता अचेत लेटा हुई थी। पलंग पर एक सफेद चादर बिछी हुई थी और दूसरी उसे गले तक उढ़ाइ हुई थी। उसके चेहरे पर एक विचित्र प्रकार का शांति छाई हुई थी। उसकी आंखें बन्द थीं और साँस काफी धारे-धारे चल रही थी।

मैं सिर से पैर तक काँप उठा। मेरी आँखें पथराने लगीं। लेकिन यह क्या ? मैंने चौंक कर अपने परों के पास देखा और उछल कर एक कदम पाछे हट गया। मुँह से एक हल्की-सा चाख निकल गई।

मेरे पैरों के पास जमीन पर एक पुराने ऊनी कंबल में लिपटा हुआ मांस का एक लोथड़ा पड़ा था—एक बालिश्त का। उसका मुँह एकदम लाल और कुछ अजीब सा था, आँखें नहीं खुली थीं और शरीर के कुछ अवयव भी अपूर्ण थे।

मेरा मुँह सफेद पड़ गया और मैं आँख फाड़-फाड़ कर उस नवजात मृत शिशु को देखता रहा।

वह मेरे प्रेम का परिणाम था—भयानक परिणाम।

मेरा दिमाग चकराने लगा। मैं दोनों हाथों से अपना सिर पकड़कर वहीं बैठ गया।

० ० ० ०

मैं बराबर रीता के पास बैठा रहा। नहाना-धोना, कपड़े बदलना, खाना-पीना, आराम करना, कुछ नहीं। शारदा जीजी ने कई बार कहा कि हाथ-मुँह धोकर चाय पी लो, लेकिन मैं जैसे कुछ सुन ही नहीं रहा था।

इस बीच रीता को सिर्फ कुछ मिनट के लिये एक बार होश आया था। उसने बड़े कष्ट से अपनी पलकें उठाकर अंतिम बार मुझे आँख भर कर देखना चाहा था। उसका चेहरा पीला पड़ता जा रहा था। उसकी पीड़ा देखकर मेरी आँखें आँसुओं से भर गईं।

उसके होश में आते ही मैं झपट कर उठा और उसके एकदम निकट जा पहुँचा। उसने बड़ी पीड़ा से अपना हाथ धीरे-धारे उठाया, जिसे मैंने फिर पलंग पर रख दिया और स्नेह से उसके बालों को सहलाने लगा।

उसके मुख की कांति दुर्बलता के कारण क्षीण हो चुका था। उसने अपना आँखें मेरे चेहरे पर गड़ाई और मुझे पहचानने का कोशिश की, मानों उसे मेरे आने का यकीन न हो।

वह मुझे पहचान गई। उसने अपने फीके मुख को मेरी ओर किया और बड़ी कठिनाई से मुस्कराने की चेष्टा की। मानो मुझे देख कर वह अंतिम बार अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रही हो।

मैं शर्म और क्षोभ से स्वयं ही पश्चाताप की अग्नि में जल रहा था। मेरे ही कारण रीता मृत्यु के मुख में जा रही थी और उसका सर्वनाश हो रहा था।

मैंने रीता की आँखों में बड़े गौर से यह देखने की चेष्टा की, कि अब उसका मेरे प्रति क्या भाव है। वह अपने दुर्भाग्य के लिये मुझे कहाँ तक अपराधी समझती है और मुझे घृणा तो नहीं करने लगी है।

लेकिन नहीं, मैंने देखा, उसका हृदय उस समय भी प्रेम की भावना से पवित्र था, विश्वास से पूर्ण था ।

मैं समझ गया था कि अब कुछ क्षणों की ही बात है, इसलिये अपना सारा पाप उससे क्षमा माँग कर धो देना चाहता था। वह प्रति पल मृत्यु के निकट होती जा रही थी ।

"रीता"।— मैंने उसके कान के पास अपना मुँह ले जाकर धीरे से कहा—"रीता"।

मैं उससे क्षमा माँगना चाहता था, लेकिन उसके चेहरे के निष्कपट और स्नेह पूर्ण भाव को देख कर मैंने ऐसा नहीं किया।

वह मृत्यु की सीढ़ी की ओर अपना कदम उठा चुकी थी। मैं इस समय कोई भी ऐसी बात नहीं करना चाहता था, जिससे उसे जरा भी मानसिक क्लेश होता।

H83/716R GH857.

उसने एक गहरी साँस खींची और निराश भाव से मेरी ओर देखा । शायद वह कुछ कहना चाह रही थी, लेकिन कह नहीं पा रही थी।

मेरा हृदय उसकी पीड़ा देख कर कसकने लगा। शायद वह अपनी आँखों के सामने मृत्यु की छाया देख कर सिहर उठी थी।

"रीता"।— मैंने भर्राई हुई आवाज में उसके कान में फुसफुसाया "तुम घबड़ाओ नहीं। ······अब मैं आ गया हूँ।··· ···अब तुम बहुत जल्दी अच्छी हो जाओगी।"

लेकिन रीता मुझसे अधिक समझदार थी। मेरी बात सुन कर वह क्षीण हँसी हँसने लगी। उसके फीके, पीले चेहरे पर एक बार हल्की सी लाली दौड़ गई। उसने अपनी पथराई हुई सी आँखें मेरे चेहरे पर गड़ा दीं और अविश्वास से मेरी ओर देखने लगी। शायद मेरी बात उसे बिल्कुल बहलाने

लेकिन उसकी निगाह से निगाह मिलाते ही मैं काँप उठा। वह कैसी दृष्टि थी, एकदम अपरिचित सी।

"रीता, रीता।" मैंने घबड़ा कर कहा—"इधर देखो।···मुझे पहचानती हो ? बोलो ? इधर देखो ॥

अब तक रीता एक शब्द भी न बोली थी। अब उसने बड़े कष्ट से अपना हाथ उठाया मानो मुझे सांत्वना दे रही हो और धैर्य न खोने को कह रही हो, और फिर बहुत कष्ट से धीरे-धीरे, बहुत ही धीमी आवाज में कहने लगी —"यह मेरा आखिरी वक्त है। ··· आप मेरे लिये अपनी जिन्दगी न बरबाद कीजियेगा। ··· आप·····आप··· अपनी··· ।"

वह बड़ी पीड़ा से बोल रही थी। मैं उसके आखिरी शब्द सुनना चाहता था, परन्तु वह आगे कुछ कह न सकी।

"कहो, कहो, रीता, तुम क्या कहना चाहती हो।" —मैंने उसके और भी निकट होकर बहुत ही बेचैनी और अधैर्य से पूछा।

उसका कंठ सूख रहा था। मैंने वहीं पलंग के पास स्टूल पर रखे छोटे शीशे के गिलास में पानी लिया और रीता को अपने दोनो हाथों से सहारा देकर बहुत आहिस्ता से उठा कर, अपनी छाती से टिका लिया। फिर धीरे से गिलास उसके मुँह से लगा दिया।

उसने बड़ी कठिनाई से दो घूंट पानी अपने गले के नीचे उतारा। मैंने धीरे से उसका सिर अपनी गोद में रख लिया और उसके मुँह से आगे के शब्द सुनने के लिये प्रश्नसूचक दृष्टि से उसकी निस्तेज आँखों की तरफ ताकने लगा।

उसके ओठ फिर हिले और वह कराहती हुई टूटे फूटे शब्दों में बोली—"आप अपनी शादी कर लीजियेगा।"

मेरे ऊपर जैसे बज्र गिर पड़ा। अब मुझे एक और ही संदेह होने लगा।

शारदा जीजी ने मुझे आठ दस दिन पहले बुलाया था। इस बीच मेरे विवाह की तैयारियाँ होती रही थी और मैं स्वयं कोई निर्णय न कर पाया

था। मेरे विवाह के कार्ड आदि भी लोगों को भेजे जा चुके थे। शारदा जीजी को भी अवश्य ही निमंत्रण आया होगा और यहाँ रीता ने भी उसे पढ़ा होगा ।

मेरा मन जैसे कचोटने सा लगा। रीता ने शारदा जीजी के मुझे पत्र लिख देने के बाद व्यग्रता से मेरी प्रतीक्षा की होगी। सात-आठ दिन तक उसने लगातार मेरी बाट जोहने के बाद मेरे स्थान पर मेरी शादी की सूचना पाई होगी। उसकी सारी आशायें धूल में मिल गई होंगी और फिर उसने मेरे रास्ते से हट जाना ही अच्छा समझा होगा। और तब उसने अपने आप को किसी विपत्ति में डाल कर अपनी यह हालत बना ली होगी।

मेरा सारा बदन कँपकँपी से थर्राने लगा। अपनी गोद में रखे उसके सिर की ओर मैं विवश भाव से ताकने लगा। मैं उसकी कृतज्ञता के भार से दबा हुआ था। वह अब मुझे रीता नहीं, बल्कि उसके रूप में कोई देवी मालूम हो रही थी। उसने कितना बड़ा त्याग किया था—लेकिन इसके साथ ही मुझपर कितना बड़ा अत्याचार भी।

मेरा मन मुझे धिक्कारने लगा। ओ स्वार्थी पुरुष, वह तेरे कारण अपनी जान दे रही है और तू उसकी लाश पर अपना घर बसाने जा रहा है। उसका सर्वनाश करने वाले, लानत है तेरी इस प्रकृति पर।

मेरे मन में एक नया ही विचार आया और एक नई आशा का उदय हुआ। क्या मैं रीता को बचा नहीं सकता ? मैं किसी भी मूल्य पर उसके प्राणों की रक्षा को तैयार था। उसके लिये कोई भी कीमत देने को तैयार था।

शारदा जीजी, जो रीता के इस अंतिम समय में उसके साथ ही रहना चाहती थीं, मुझे रीता का सिर अपनी गोद में लेते देखकर कमरे से बाहर चली गई थीं। मेरे पागलों की तरह चिल्लाकर पुकारने पर दौड़ी आईं। शायद वह यह समझकर घबड़ा गईं कि रीता चल बसी है। मैंने जल्दी-

जल्दी उन्हें समझा कर वापस भेजा—शहर के किसी बहुत बड़ डाक्टर को बुलाने को।

अब रीता असह्य पीड़ा से छटपटा रही थी—और फिर अचेत हो चुकी थी।

मेरी आँखों में एक प्रकार की कठोरता सी आ गई। मैं अब उसकी मौत से लड़ने को तैयार हो चुका था।

० ० ० ०

दस बजते-बजते डाक्टर आ गया। रोगिणी की हालत उसे बिल्कुल आशाजनक न मालूम दी। फिर भी, शारदा जीजी के कहने से और मेरी व्यग्रता और उत्साह देखकर और अपनी लम्बी फीस के लोभ से वह एक बार प्रयत्न करने को तैयार हो गया।

सबसे पहले रीता को मर्फिया का इंजेक्शन दे दिया गया। उसके बाद तरह-तरह की दवाइयाँ और सुइयाँ दी जाने लगीं।

मैं अपने आप में अपूर्व शक्ति का अनुभव कर रहा था। सफर की थकावट के बावजूद भी मैं डाक्टर के हाथ से पुर्जा छूटते ही दवा या इंजेक्शन लाकर रख देता था।

दो घण्टे तक जीवन और मरण का यह संघर्ष चलता रहा। तरह-तरह के उपचार होते रहे। अन्त में, बारह बजे के करीब डाक्टर हताश होकर उठ खड़ा हुआ। उसकी दशा सुधारने की बात तो दूर, वह उसे होश में लाने तक में सफल न हो सका।

मैंने आगे बढ़कर व्यग्रता से पूछा—कोई आशा है, अब भी ?

उसने मुँह हिलाकर मना कर दिया। मैं पागल होकर आगे बढ़ा और डॉक्टर के कोट की कालर पकड़ कर खींचते हुये चिल्लाया—"डाक्टर, उसे बचा लो, किसी भी कीमत पर। जितना रुपया माँगोगे, दूँगा। अगर खून की जरूरत हो, तो मैं अपने बदन का सारा खून देने को तैयार हूँ। अगर मेरे जान देने से वह बच जाय, तो मैं इसी वक्त मरने को तैयार हूँ। लेकिन

उसे बचा लो डाक्टर। मैं उसके बिना जिंदा नहीं रह सकता। डाक्टर, डाक्टर, उसे बचा लो।"

डाक्टर को मेरा यह प्रलाप हास्यजनक मालूम हुआ। पहले तो वह मेरे चिल्लाने पर सहम गया, लेकिन बाद में उसने एक हल्के झिटके से अपना कोट मेरे हाथों से छुड़ाया और कमरे के बाहर हो गया।

चलते वक्त वह कह गया था कि मरीज की साँस एक-डेढ़ घंटे और चलेगी।

० ० ० ०

रीता का माथा भट्ठी की तरह तपने लगा था। मैं एक-एक मिनट पर पट्टियाँ बदलता था और उसके सिर पर बर्फ रखता था।

डेढ़ बज गया और उसके शरीर के तापमान में कोई कमी नहीं हुई। मुझे भी स्पष्ट दिखाई देने लगा कि सारे प्रयत्न विफल होने जा रहे हैं। फिर भी, न जाने किस आशा से मैं यंत्रवत् अपना काम करता जा रहा था। करीब दो बजे, रीता ने अंतिम बार अपनी आँखें खोलीं। उसके ओठ फड़फड़ाये और उसके मुँह से कुछ अस्पष्ट स्वर निकले।

"रीता, मुझे माफ कर देना।" मैंने आँखों में आँसू भर कर कातर होकर कहा।

उत्तर में रीता कुछ न बोल सकी। सिर्फ एक बार उसने उँगली उठा कर संकेत से ऐसी बातें न करने को कहा। उसकी बुझती आँखों में चिर-स्नेह का भाव झलक रहा था।

मैं पागलों की तरह रोने-चिल्लाने लगा—"रीता, तुम मुझे यों छोड़ कर न जाओ। रीता, मेरी रीता।"

लेकिन अब तक वह फिर अचेत होने लगी थी।

मैंने देखा, उसके शुभ्र भाल पर उसकी काली, घुँघराली लटें बिखर आईं, उसकी बोझिल पलकें धीरे-धीरे झुक कर बन्द होने लगीं। उसके लाल ओठ काले पड़ने लगे, उसका गरम, तपता हुआ शरीर ठंडा होने लगा,

उसका ज्वर से तमतमाता चेहरा सफेद पड़ गया, उसका कोमल शरीर ऐंठने लगा।

"रीता"—मैं भयभीत होकर अपनी सारी ताकत से चिल्लाया।

लेकिन वह कुछ न बोली। बल्कि मुझे उसके मुँह पर, मौत का भयानक साया दिखाई देने लगा। वह आँख तक न खोल सकी। उसका सिर मेरी गोद से लुढ़कने लगा। अन्त में एक हल्की सी हिचकी और बस।

दोपहर का गहरा सन्नाटा और कमरे की ऊँची दावारें मेरे साथ संवेदना प्रकट कर रही थीं। रीता अपनी सारी पाड़ायें अपने हृदय में छिपाये किसी अज्ञात दिशा को बढ़ चुकी थी।

सब कुछ समाप्त हो चुका था।

मैं बच्चों की तरह बिलख-बिलख कर रोने लगा था।

० ० ० ०

रीता के पति ने ही आकर दाह-कर्म किया था।

० ० ० ०

रात को आठ बजे के लगभग मैं शारदा जीजी से विदा लेकर स्टेशन की ओर जा रहा था। उन्होंने मुझे लाख समझा-बुझा कर और कसमें खिलाकर एक दिन रोकना चाहा था, परन्तु मैं नहीं रुका था। यहाँ तक कि उनके बहुत मिन्नतें करने पर भी मैंने पानी तक नहीं पिया।

सीढ़ी से फिसल जाने के कारण रीता की वैसी दशा हुई थी, यह भी उन्होंने मुझे बताया था।

चलते समय उन्होंने मुझ एक छोटी सी जिल्ददार कापी दी थी और कहा था कि यह रीता ने मरने के दो दिन पहले उनके पास रखवाई थी। वह बोलीं, "अब इसे तुम्हीं रख लो। मैं इसका क्या करूँगी।"

मैंने अपना मुर्दा हाथ बढ़ा कर उसे ले लिया था। और चुपचाप उन्हें हाथ जोड़कर चल पड़ा था।

रात्रि की गहन निस्तब्धता को चीरती हुई ट्रेन अपनी पूरी रफ्तार से भागी चली जा रही थी। एक छोटे से कंपार्टमेंट के एक कोने में मैं उदास, खोया-खोया बैठा था। मेरे हृदय में नैराश्य के बादल उमड़ रहे थे। मैं चुपचाप अपने विचारों में लीन, खिड़की पर अपना सिर टिकाये बैठा था और कभी-कभी इधर-उधर या खिड़की से बाहर देख लेता था।

आज, शायद जीवन में पहली बार, मेरे मन में संसार से विमुख हो जाने की इच्छा हो रही थी। मैं सोच रहा था कि क्या यह संभव नहीं है कि समाज में रहते हुये भी अपने अस्तित्व को उसमें लीन न होने दिया जाय ? क्या यह नहीं हो सकता कि समाज से अपने सभी संबंध तोड़ दिये जाएँ, और एकाकी जीवन बिताना संभव हो सके ?

नहीं। मैंने सोचा, ऐसा शायद कभी संभव नहीं है। समाज का एक अनिवार्य नियम है, उसका एक चिरंतन आकर्षण है, वह एक स्थायी बंधन है। उससे कोई तब तक मुक्ति नहीं पा सकता, जब तक वह जीवित है। समाज में रहना हो, तो समाज का बनना ही पड़ेगा।

हमारे अनेक सामाजिक संबंध हैं, जो हमें और साथ ही समाज के प्रत्येक व्यक्ति को एक प्रकार के ऐसे अंतर्सम्बन्ध से जोड़े हुये हैं, जिससे छुटकारा नहीं पाया जा सकता। दूसरों के सुख-दुख से हमें प्रभावित होना ही पड़ेगा और अपने सुख-दुख में हमें दूसरों के सम्मिलन और संवेदना सहानुभूति की अपेक्षा रहेगी ही।

समाज के बहुत से ताने-बाने, बहुत से जाल, हमारे चारों तरफ फैले हुये हैं। वे हमें मर्यादा, नैतिकता के और अन्य समाजिक मूल्यों के अनुसार चलने को विवश करते हैं। वे नियम समाज ने बनाये हैं, हमारे लिये।

हमने बनाये हैं समाज के लिये। उनकी छूट किसी के लिये भी नहीं हो सकती।

···मर्यादा के झूठे सिद्धांत, नैतिकता की अप्राकृतिक और अमानवीय भावनायें और समाज के स्वार्थी लोगों द्वारा निर्मित-निर्धारित विभिन्न मानव-मूल्य।···

···रीता की मृत्यु।···प्रेम, विवाह, पातिव्रत्य, सतीत्व, व्यभिचार और अनाचार।···समाज की मर्यादा।

मुझे बहुत तीव्र पीड़ा हुई। मैं कल शाम से एक पल के लिये भी विश्राम नहीं कर पाया था। रात को गाड़ी पर भी नहीं सो पाया था, यद्यपि एकाध बार मैंने सोने की चेष्टा भी की थी। आज दिन भर तो मैंने किसी प्रकार की थकान या कमजोरी नहीं महसूस की, लेकिन रीता के दाह-संस्कार के बाद घर आते ही जैसे मैं एकदम निर्जीव-सा हो गया। रीता का सूना कमरा तो जैसे मुझे काट खाने को दौड़ता था, निगल जाना चाहता था।

मैं कल शाम से भूखा भी था। आज दिन भर तो एक बूँद पानी भी पेट में नहीं गया था। इस वक्त भूख बुरी तरह सता रही थी। पेट में ऐंठन-सी हो रही थी।

मेरा अंग-अंग टूटने लगा। लंबी थकावट और सो न सकने के कारण आँखों में बुरी तरह जलन मचने लगी। मैंने आँखें बंद करने की कोशिश की तो उनमें से पानी बहने लगा। काफी देर तक तो मैं रूमाल से आँखें पोंछता रहा, फिर ऐसे ही बैठा रहा।

मुझे रात के घनघोर अँधेरे में अपनी आँखों के सामने रीता का चेहरा दिखाई देने लगा। मरती हुई रीता का पीला, कांतिहीन मुख।

मैं चौंक पड़ा और सीधा होकर बैठ गया। मेरा ध्यान अपने और रीता के संबंधों की ओर गया। हम लोगों के बीच वैसे संबंध के लिये कौन जिम्मेदार है ? मैं ? रीता ? या समाज ?

नहीं, म उलझन में पड़ गया और मन ही मन बड़बड़ाने लगा।

सारे नैतिक मूल्य, समस्त रीति-विधियाँ, सारे निषेध और सभी सामाजिक मर्यादायें मिल कर जैसे समाज फो इकाईयों—व्यक्तियों—का उत्पीड़न करने को ही बनाई गई हैं, उसकी होड़ में लगी हैं।.....

मेरा सिर जैसे भारी होने लगा। और मन विद्रोह की भावना से भर गया।

लेकिन मेरी विचारधारा फिर यहाँ से टूट कर वहीं जा लगी जहाँ से रुकी थी। संसार की असारता फिर मन को प्रभावित करने लगी।

गाड़ी की खट् खट् खट् खटाखट् की आवाज ने मेरा ध्यान तोड़ा।

यह गाड़ी ? हाँ, यह गाड़ी दिल्ली से इलाहाबाद जा रही है। कल शाम यह इलाहाबाद से दिल्ली के लिये रवाना हुई थी। यह रोज इलाहाबाद से दिल्ली और दिल्ली से इलाहाबाद जाती है। वाह, यह क्या बात हुई ? नहीं, यही बात है।

हिश्। क्या बेकार की बात है !

मैंने अपना ध्यान दूसरी तरफ लगाया। चाहा।

मुझे सहसा एक और बात का ध्यान आया। आज मैं बिना किसी सूचना के दिन भर दफ्तर से गायब रहा था। मैंने सोचा, मुझे अर्जी देकर आना चाहिये था—चाहे जैसी भी परिस्थिति मेरे सामने क्यों न रही हो।

उँह, मुझे नौकरी से एक प्रकार की विरक्ति-सी मालूम हुई।

बाहर कोई स्टेशन अब तक आ जा चुका था। स्टेशन पर जलती हुई सफेद, पीली बिजली की बत्तियों की रोशनी ट्रेन में छँट कर आ रही थी। कोलाहल बढ़ता जा रहा था और सोने और ऊँघने वाले लोग जाग गये थे।

मैंने अपने आस पास बैठे सहयात्रियों पर एक निगाह डाली। मेरे सामने वाली बर्थ पर एक कोने में एक मुलायम-सी बिछी हुई गद्दी पर एक दो वर्ष का शिशु सो रहा था। उसी से सटी हुई एक युवती भी सो रही थी, जो शायद उसकी माँ थी। उसका पति बैठा हुआ था और अपने घुटनों पर सिर रखे था। रह-रह कर वह नींद भी ले लिया करता था।

उन लोगों के बगल में बर्थ के शेष भाग को घेरे हुये एक मोटे से सज्जन सपत्नीक सो रहे थे।

दूसरी तरफ की बर्थ पर एक गृहस्थ सज्जन अपने तीन बच्चों और पत्नी के साथ सफर कर रहे थे। उनके परिवार के सभी लोग सो रहे थे, केवल सबसे छोटा बच्चा, जिसकी आयु डेढ़ दो वर्ष रही होगी, जाग रहा था और कुतूहलवश बाहर स्टेशन पर झाँक रहा था। उसकी माँ, जो खिड़की पर सिर रखे सो रही थी, निद्रावस्था में ही उस शिशु की एक टाँग को नीचे से पकड़ हुई थी, इस भय से कि कहीं वह उछलकर बाहर न जा गिरे।

उस बच्चे के लिये बाहर की सभी चीजें नई थीं। वह सब कुछ देख-देख कर बहुत प्रसन्न हो रहा था और किलक-किलक कर उछल रहा था। वह चाह रहा था कि उसकी माँ भी उसकी इस खुशी में शरीक हो। लेकिन उसे वैसा न करते देख और बराबर सोते देखकर वह खिड़की पर रखा उसका सिर थपथपा देता था और उसके मुँह पर ढका हुआ उसका घूँघट हटाकर अस्पष्ट स्वर से उसे अपनी बात समझाने का प्रयत्न कर रहा था।

वह शिशु मुझे बहुत ही प्यारा मालूम हुआ।

मेरे बगल में पाँच-सात युवक कतार बनाये बैठे थे और सभी एक-दूसरे के कंधों पर अपनी अपनी खोपड़ियाँ रखे ऊँघ या गहरी नींद में सो रह थे। वे सभी विद्यार्थी मालूम होते थे और शायद कहीं से कोई मैच खेलकर वापस आ रहे थे। सोने से पहले काफी देर तक वे सभी मैच में अपनी टीम के हार जाने के कारणों पर बहुत आवेश में विवाद करते रहे थे।

मुझे उनको देखकर अपना कुछ दिनों पहले का विद्यार्थी-जीवन याद आने लगा।

मेरे कुछ सहयात्री नींद की खुमारी में ही नीचे स्टेशन पर उतर गये थे और पान, बीड़ी, सिगरेट या चाय लेकर पी रहे थे।

... माँ-शिशु, पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका, युवा और प्रौढ़ावस्था, विद्यार्थी और गृहस्थ जीवन, नौकरी और व्यवसाय, जीवन और मरण।

ट्रेन उस समय तक स्टेशन छोड़ कर रफ्तार में आ चुकी थी।

मेरी आँखों पर फिर विषाद का पर्दा पड़ गया और मैं फिर किन्हीं विचारों में खो गया।

इलाहाबाद आकर मैं सीधा घर पहुँचा और माँ-बाप के प्रश्नों की झड़ी लगा देने पर भी किसी को कोई उत्तर न दे, सीधे अपने कमरे में जाकर सो गया। दफ्तर का समय होने पर नहा-धोकर खाना खाया और निरुत्साहित सा दफ्तर गया। वहाँ दिन भर आँखों में जैसे आग सी जलती रही। कोई काम न हो सका। शाम को घर आकर चाय पीकर मैं फिर सो गया और फिर दूसरे दिन सबेरे तक सोता रहा।

उस समय, जब मैं जागा, मेरी तबियत काफी हल्की थी। इतवार का दिन था और दफ्तर भी नहीं जाना था। यह सोचकर मुझे काफी निश्चिंती मालूम हुई।

रीता की जो डायरी मुझे शारदा जीजी ने दी थी, मैंने निकाली और पढ़ने लगा। उसमें लिखा था—

आज हम सब लोग इलाहाबाद आ गये। पिता जी कहते हैं कि अब यहाँ से तब तक वापस कानपुर न जायेंगे, जब तक मेरा विवाह न होगा। हुँ, यह भी कोई बात हुई? लेकिन वह इसी पर अड़े हैं।

० ० ० ०

दो-तीन दिन तो यहाँ मेरा मन बिल्कुल नहीं लगा। मैं बड़ी परेशान सी रही। बाप रे, कैसे रहूँगी यहाँ? लेकिन अब धीरे-धीरे कुछ-कुछ तबियत लगने लगी है। इलाहाबाद है अच्छा शहर।

० ० ० ०

आज हम लोग मौसा जी के यहाँ से वापस आ गये। वह सिविल लाइंस के भी आगे रहते हैं—यहाँ से काफी दूर।

मैंने तो मौसा जी को पहली बार देखा। बिल्कुल बैल की शकल के हैं। मुझे तो उनका चेहरा देखते ही बड़े जोर की हँसी छूटने लगी थी। बड़ी मुश्किल से रोक पाई। कहते थे, आ री रीता, आ। अब तो तू मेरे ही घर रह जा। तेरा ब्याह भी यहीं से कर दूँगा। दिल्ली में करेगी न ? पसंद है ? बहुत बड़ा शहर है, हाँ। रीता बेटी खूब घूमेगी। ……आ न, हिश शरमाती है।

और यह कह कर वह हाथ फैलाकर मुझे गोद में उठा लेने को तैयार हो गये। वाह रे, मैं तो शर्म से पानी-पानी हो गई। और आँचल से मुँह छिपाकर अंदर माता जी के पास भाग गई।

लेकिन मौसा जी हैं अच्छे आदमी।

० ० ० ०

आज हम लोगों ने त्रिवेणी में स्नान किया। तोबा रे, कितना ठंडा पानी था। मेरा तो जैसे खून जमने लगा। फिर भी, मैं नहाई खूब जी भर के। खूब गोते लगाये।

लेकिन यह मुन्नू कितना शैतान है। मेरी साड़ी का पल्ला पकड़ कर मुझे गहरे पानी में खींचे लिये जाता था। कहता था, इतनी बड़ी होकर वहाँ किनारे पर क्या नहाती हो ? यहाँ आओ गहरे में तो मालूम पड़े।

और ये स्कूली लड़कियाँ कितनी बेशर्म होती हैं। कैसे नोकदार चोलियाँ पहने, भीगी साड़ी उछालती हुई इधर से उधर दौड़ रही थीं। हाय रे।

यह मुन्नू भी बड़ा शैतान होता जा रहा है। अरे वह कोई सामने रहते हैं उसके रमेश चाचा। उन्हीं से न जाने क्या-क्या झूठी-सच्ची लगा रहा था। मैं उसे यह देती हूँ, मैं उसे वह देती हूँ, मैं उससे यह कहती हूँ, मैं उससे वह कहती हूँ। हुँ, ये भी भला किसी गैर से इस तरह से कहने की बातें हैं ?

लेकिन एक बात है। उसके रमेश चाचा हैं अच्छे आदमी। सुनते हैं, यहीं यूनिवर्सिटी में पढ़ते हैं—एम० एस-सी० में।

ये भला एम० एस-सी० में क्या पढ़ाया जाता होगा ? सुना है, बारहव

दर्जे के भी आगे यह दर्जा होता है। तो बारहवाँ दर्जा पास हैं उसके रमेश चाचा।

लेकिन नाम मजे का है ।—रमेश चाचा। भला बताओ, यह भी कोई नाम है, जो ऐसे पुकारा जाय। अरे, मुन्नू को पुकारना चाहिये रमेश भाई साहब। या रमेश भइया पुकारे। या और जो कुछ भा उसका मन हो,वह पुकारे। रमेश चाचा तो सुनने से मालूम होता है कि किसी बड़े बुजुर्ग आदमा का नाम है—चाचा जी। लेकिन अगर रमेश चाचा को कोई देखे, तो एक लड़का। अरे मुझसे ज्यादा से ज्यादा दो-तीन साल बड़े होंगे, और क्या ?

० ० ० ०

ये मुन्नू के रमेश चाचा तो बड़े गुरू निकले। पहले तो मैं लाख छत पर खड़ी ताकती रहूँ, एक बार इधर भूल कर भी नहीं निगाह करते थे, साधे-सादे अच्छे लड़कों का तरह इधर से उधर निकल जाते थे और उधर से इधर। लेकिन इनका असली रंग तो अब निकलता जान पड़ रहा है।

आज सबेरे मुझे पान देने लगे। फिर शाम को उधर बुलाकर मुझे संतरा पकड़ा दिया। वाह रे, जैसे मैं कोई पाँच बरस की बच्ची हूँ। और कोई वक्त होता तो मैं हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाती, लेकिन उस वक्त न जाने क्या सोच कर चुप रही।

फिर हजरत पूछते हैं—"तुम्हारा नाम क्या है ?" तो ये बात है। अब मैं समझी। लेकिन मैंने चुपचाप से अपना नाम भी बता दिया।

और जब मैंने नाम पूछा, तो चाचा जी मुँह फेर कर चल दिये। कैसे चालाक हैं !

नाम, पता सब जानते हैं लेकिन ऊपर से भोले बनते हैं। वाह रे !

० ० ० ०

ये आजकल न जाने मेरा मन न जाने कैसे-कैसे करने लगा है। हाँ, एक बात है।—हैं मुन्नू के चाचा बड़े पक्के जादूगर। जाने क्या जादू कर दिया है, मुझ पर। हर वक्त खड़ी-खड़ी उनके कमरे की तरफ ताकती रहती हूँ। जब वह घर में नहीं होते हैं, तो उनके आने की बाट जोहती रहती हूँ।

० ० ० ०

ये रमेश चाचा में एक बात बहुत बुरी है। जब भी दीवार के पास बुलायेंगे, तो आते ही हाथ पकड़ लेंगे। यह क्या बात है ? बातचीत करनी है तो दीवार के उस तरफ वह खड़े रहें और इस तरफ मैं। फिर करें बातचीत जितनी चाहें।

० ० ० ०

कभी-कभी तो वे ऐसी बातें करने लग जाते हैं कि मेरा कलेजा धक-धक करने लगता है। पूछते हैं—"मुझसे प्रेम करती हो ?"

वाह रे, तो अब उनकी हिम्मत यहाँ तक बढ़ गई है। लेकिन यही नहीं, आज बोले—"एक चिट्ठी लिखकर दे दो।"

लो, भला बताओ, चिट्ठी लिखकर क्या दूँ ? अरे, चिट्ठी लिखी जाती है अगर कोई परदेश में हो—कि अपने शहर में—पड़ोस में।

० ० ० ०

लेकिन बातचीत तो बहाना है। असल में तो ऐसा मालूम होता है कि हाथ पकड़ने को ही बुलाते हैं।

पर एक बात जरूर है। बातें खूब मजे की करते हैं। मुझे तो हँसी छूटती है। भला, ये बच्चों की सी बातें मुझसे क्या करना, अरे मुझसे तो उन्हें कुछ और मेल की बातें करनी चाहिये। जिनमें कुछ···। धत्, यह मैं क्या कहने लगी।

० ० ० ०

अब तो न जाने क्या हो गया है कि उन्हें देखे बिना एक पल भी चैन नहीं पड़ता।

और हाँ, सुना है, कल अपने किसी दोस्त के ब्याह में लखनऊ जा रहे हैं।

अरे हजरत, पहले अपना ब्याह तो कर लो। फिर दोस्तों के ब्याह में जाते रहना।

अगर बच्चू का ब्याह मुझसे हो जाय, तो ऐसा बाँधकर रखूँ कि सब

दोस्तों वोस्तों का चक्कर भूल जायें। लेकिन मुझसे,··· हिश, मुझे तो शरम लगती है।

० ० ० ०

और आज तो सचमुच वह बिस्तर बाँधकर जाने के लिये तैयार हो गये। मैंने फोटो माँगी, तो दे तो दी, लेकिन मुस्कुराने के बाद।

छी, मैं तो लाज से मर गई।

० ० ० ०

ये न जाने क्या होता जा रहा है। हम लोगों में शायद पिछले जन्म का कोई रिश्ता है या और कोई बात है। इतना मोह बढ़ाना क्या ठीक होगा?

दो-तीन दिन के लिये बाहर गये तो मेरी तबियत यहाँ कैसी-कैसी लगने लगी।

लेकिन मैं अब क्या करूँ जो कदम आगे बढ़ाने को उठा चुकी हूँ उसे पीछे कैसे रखूँ!

० ० ० ०

ये आज न जाने मुझसे कैसा अपराध हो गया। वह तो बेचारे पढ़ने जा रहे थे। मैंने ही उन्हें अकेले में बुलाया। लेकिन मैं तो यह नहीं चाहती थी···। नहीं, सारी भूल मेरी ही है।

और अगर मैं चाहती, तो उन्हे रोक भी सकती थी। लेकिन उस वक्त न जाने मुझे क्या हो गया था। जैसे मैं आसमान में उड़ी जा रही होऊँ। उनकी बाँहों की कसावट ने मुझे बेहोश कर दिया था।

अब तो मेरा यह मन हो रहा हैं कि कहीं से जहर मिल जाय, तो खाकर सो रहूँ या छत पर से फाँद पड़ूँ। कभी मन होता है कि गंगा जी जाऊँ और डूब कर मर जाऊँ।

० ० ० ०

हे भगवान, यह मुझसे कैसा अपराध हो गया है। हे परमात्मा, अगर कहीं कुछ हो जायेगा. तो मैं किसो को मुँह दिखाने लायक न रहूँगी। पिता जी को तो अगर मालूम हो गया, तो वह तो मुझे जान से मार डालेंगे।

इतना बड़ा पाप, हे भगवान, मेरे ऊपर कृपा करना ।

० ० ० ०

मुझे दो दिन से नीद नहीं आ रही है । मेरी आँखें लाल पड़ गई हैं । हर वक्त यही दिल करता है कि किसी भी तरह से अपनी जान दे दूँ और अपने खानदान की इज्जत को मिट्टी में मिलने से बचा लूँ ।

० ० ० ०

आज तो मैंने माता जी से गंगा जी चलने को कहा भी था । लेकिन उन्होंने टाल दिया । अगर वह चलतीं, तो मैं आज जरूर ही डूब कर मर जाती ।

० ० ० ०

हे प्रभु ! जिस बात से मैं डर रही थी, वही हुई । दो दिन से न जाने कैसी तबियत हो रही है । हर वक्त सिर चकराता रहता है, पेट में दर्द रहता है. जी मिचलाता रहता है और हमेशा उबकाई सी आती रहती है ।

न जाने क्या होने वाला है, भगवान अब तो माता जी को शक होने लगा है । आज तो पूछ भी रही थीं कि इस बार क्या बात है ? कैसी तबियत है ?

० ० ० ०

माता जी को सब कुछ मालूम हो गया है । उन्होंने पिता जी को भी बता दिया है । हे परमेश्वर, आज पिता जी कैसे गुस्से से देख रहे थे मुझे । हे धरती माता, तू फट जा और मैं तुझमें समा जाऊँ ।

० ० ० ०

हाय, आजकल उन्हें भी न जाने क्या चिंता हो रही है, जो बताशे की तरह घुले जा रहे हैं । मैं उनसे क्या बताऊँ कि मुझे क्या हो गया है । लेकिन इसमें उनका कोई दोष नहीं है, सारी भूल मुझ अभागिन की है ही ।

० ० ० ०

आज वह बहुत परेशान थे । चिट्ठी में लिख कर पूछते थे—"बताओ क्या बात है, नहीं तो मैं प्राण दे दूंगा ।

मैं उन्हे क्या बताऊँ ? कैसे बताऊँ ?

मेरी शादी के सिर्फ आठ दिन बाकी हैं। मेरा कलेजा न जाने क्यों ब्याह का ख्याल आते ही काँपने लगता है।

० ० ० ०

मेरा ब्याह क्या हुआ, जैसे में नरक में आ गई। सास का ब्यवहार तो बहुत ही खराब है। पति भी सास के ही कहने में ही हैं।

लेकिन फिर भी खैर है। भगवान मेरी नाव ऐसे ही पार लगा दे। ऐसे ही मेरी जिन्दगी काट दे।

० ० ० ०

मेरे पति मुझे पतित और भ्रष्ट समझने लगे हैं। गाली देते हैं और कभी-कभी तो निर्दय होकर बेंत से पीटते भी हैं।

मैं पापिष्ठा इसी लायक हूँ।

० ० ० ०

न जाने मुझे कैसा लगता है। लगता है, जैसे घर में सभी मेरे दुश्मन हैं कोई अपना नहीं।

मैं आजकल अक्सर अकेले में रोती रहती हूँ। रात में अकेली जागती रहती हूँ। शरीर में हर वक्त तेज जलन होती रहती है। कोई मेरे दिल की सुनने वाला, कोई मेरे दुख को बटाने वाला नहीं है। कोई ऐसा नहीं है, जिससे मैं अपना दुखड़ा कह सकूँ, अपना दिल हल्का कर सकूँ।

० ० ० ०

यह शारदा बहिन बहुत अच्छी हैं। मुझे बिल्कुल सगी बहिन की तरह मानती हैं। बातें क्या करती हैं, जैसे मन मोह लेती हैं।

० ० ० ०

अब तो मेरी तबियत बहुत खराब होती जा रही है। हर वक्त पेट में दर्द हुआ करता है। लगता है, पेट फट जायगा। पेट के अन्दर कुछ धीरे-धीरे रेंगता सा मालूम होता है। ... ... दिन भी तो होने आ रहे हैं।

० ० ० ०

आज शारदा बहिन को मैंने अपने कलंकित जीवन के बारे में सब कुछ बता दिया। और अब मुझे अपना मन कुछ हल्का भी मालूम होता है।

वह मुझे चाहती भी तो कितना हैं ?

० ० ० ०

हे भगवान, अब मेरी लाज तुम्हारे ही हाथ में है। अब शारदा बहिन मुझे अपने घर ले जाने को कहती हैं। भला, अच्छा-बुरा जैसा भी है, मेरा तो अब यही घर है। पति चाहे जैसे हों, मेरा तो स्थान अब उन्हीं के चरणों में है। उनका व्यवहार चाहे जैसा हो, मेरा तो धर्म उन्हीं की सेवा करना है।

० ० ० ०

आखिर शारदा बहिन मानी नहीं, और मुझे अपने घर लाकर ही रहीं। मेरा जी अब बहुत घबड़ाता है। हे भगवान, अब देखें, क्या होता है ?

० ० ० ०

कल से मेरा मन खुशी से नाच उठ रहा है। मैंने शारदा बहिन को इलाहाबाद कोई भी समाचार देने की मनाही कर दी थी, पर वह मानी नहीं। और अब, सुना है, वह जल्दी ही यहाँ आ रहे हैं। मैं अब किस लायक रही ? छी, मुझे वह इस हालत में देखेंगे ? तो क्या कहेंगे। लेकिन अगर अब भी वह मुझे अपनी दासी बनाने को तैयार हों तो मेरा अहोभाग्य।

लेकिन क्या मेरे भाग्य में यह होना लिखा है ?

० ० ० ०

नहीं, अब मेरा जीना बेकार है। आज इलाहाबाद से उनका ब्याह होने की खबर आई है।

अच्छा है, वह सुख से रहें। इसी से मैं भी खुश हूँ। मैं उनके रास्ते का रोड़ा क्यों बनूं।

लेकिन मैं अब क्या करूँ ? मुझे तो अब मौत का ही सहारा है। पति

ने ठुकराया, फिर प्रेमी ने भी ठुकराया। हे भगवान, अब तो तुम्हारा ही एक आसरा है। तुम्हीं मेरा उद्धार कर सकते हो।

० ० ० ०

रीता की डायरी में अलग-अलग पृष्ठों पर ऊपर की बातें लिखी हुई थीं। तारीख किसी भी पृष्ठ पर नहीं पड़ी हुई थीं।

और जब मैं वह डायरी पढ़ कर उठा, तो मेरी आँखों में आँसू छलछला आये थे।

दो दिन बाद ही मेरा विवाह हो गया। मैं पत्थर की तरह बना रहा। मुझे जहाँ उठा कर बैठा दिया जाता था, वहाँ बैठ जाता था और जब उठा दिया जाता था, उठ कर खड़ा हो जाता था। सब कार्य सम्पन्न हो जाने पर जब मैं दूल्हन को लेकर घर आया, तब चारों तरफ सभी लोग खुश दिखाई दे रहे थे।

सिर्फ मेरा हृदय रो रहा था।

० ० ० ०

विवाह के अगले ही वर्ष मेरी तरक्की हुई और बच्चा भी। मेरे श्वसुर महोदय ने तरह-तरह के उपहार भेजे। मेरे बाबू जी ने घर के दरवाजे पर बाजे बजवाये।

लेकिन मैं बुत बना सब कुछ देखता रहा।

० ० ० ०

आज मैं समाज का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति माना जाता हूँ। मेरी सफलता और मेरा चरित्र दूसरों के लिये आदर्श और अनुकरण करने योग्य समझा जाता है। मेरे माँ-बाप का देहान्त हो गया है और मैं परिवार का प्रमुख व्यक्ति होने के साथ ही समाज के भी प्रमुख व्यक्तियों में स्थान रखता हूं। सभा-संस्थायें मुझे अपना नाम उनके पदाधिकारियों की सूची में दे देने से अपने आपको धन्य समझते हैं और मेरा आभार मानते हैं।

दुनिया मेरी सफलता पर आश्चर्य करती है, लेकिन मैं अपनी सफलता पर रो रहा हूँ मुझे अपनी कठोरता, अपने स्वार्थ और अपनी तुच्छ-हृदयता पर आश्चर्य होता है। मुझे विश्वास नहीं होता, कि मैं वही व्यक्ति हूँ जो

एक दिन रीता की रक्षा के लिए प्राणों की बाजी लगा देने के लिये तैयार हो गया था।

मैं रात-रात भर भयानक स्वप्न देखा करता हूँ। मुझे स्वप्न में रीता का भूत दिखाई देता है—अपनी लाल-लाल अंगारे जैसी आँखों से घूरता हुआ अपने लम्बे-लम्बे डरावने दाँत किटकिटाता हुआ और अपने भयानक नुकीले नाखून दिखाकर मुझ भयभीत करता हुआ। मैं सहम कर जाग उठता हूँ। और करवटें बदल कर अपना ध्यान दूसरी तरफ लगाने की कोशिश करता हूँ—अपने बच्चों में, अपनी पत्नी में।

कभी कभी मुझे रीता भी दिखाई देती है। लेकिन अब वह मेरी आत्मा को धिक्कारती सी जान पड़ता है। मैं उसके सामने अपना सिर झुका देता हूँ, कृतज्ञता से।

अक्सर मैं यह भी सोचा करता हूँ कि आत्महत्या कर लूँ। लेकिन आत्महत्या मैं कैसे कर सकता हूँ ? मैं जीवन में बड़ी सफलता प्राप्त करने वाला आदमी हूँ, जो हमेशा संघर्षों से जूझता रहा, जीवन भर किसी भा विपत्ति को देखकर पीछे नहीं हटा। और आत्महत्या ? वह कायरता है, जीवन से डर कर भागना है, मानवता के प्रति पाप है।

लेकिन मेरा यह सुखी जीवन मेरे लिये अभिशाप बन गया है। यद्यपि आज मैं यह महसूस करता हूँ कि मुझे कोई कमी नहीं है, और ईश्वर की कृपा से घर सभी तरह से भरा पूरा है। लेकिन फिर भी मुझे एक बड़ा भारी दुख है। और वह यह कि कभी मुझे शान्ति नहीं मिलती। मैं हमेशा पश्चाताप और आत्मग्लानि से पीड़ित रहता हूँ।

रीता सच्ची थी। उसके कुल पर कलंक लगा। उसके चरित्र पर आँच आई व उसके पाप की कहानी सभी जान गये। मैं सच्चा नहीं हूँ। लेकिन मेरे यश के गीत लोग गाया करते हैं। मुझे चरित्रवान समझते हैं। और आज तो कोई यह बात जबान पर लाने का साहस भी नहीं कर सकत। कि कभी रीता या वैसी अन्य किसी लड़की से मेरा कोई सम्बन्ध रहा होगा।

खैर, छोड़िये इन बातों को। अब तो बस मुझे एक यही कष्ट है कि

मेरी आत्मा को शान्ति नहीं मिलती। जब मेरा कष्ट बहुत बढ़ जाता है तब किसी प्राकृतिक स्थान को कुछ दिन के लिये सारे कोलाहलों से दूर चला जाता हूँ और अपने हृदय की धधकती हुई आग को शान्त करने का प्रयत्न करता हूँ। पर वैसा होता नहीं।

लेकिन आज आपसे यह सब कुछ कह देने के बाद मेरा मन काफी हल्का है—ऐसा मैं अनुभव कर रहा हूँ।

———

लेखक की

आलोचना

शिवराज भूषण

आधुनिक साहित्य

हिन्दी उपन्यास में वर्ग-भावना

उर्दू साहित्य का सरल इतिहास

उपन्यास

रीता की बात

कहानी

बदलते इरादे

अनुवाद

कैंडिडे